‘प्रतिबद्ध’ पत्रिका के सम्पादक द्वारा मार्क्सवादी सिद्धान्त और सोवियत इतिहास का संघवादी-संशोधनवादी विकृतिकरण

सोवियत यूनियन के संविधान से झूठे उद्धरणों व ग़लतबयानी द्वारा राष्ट्रीय प्रश्न पर ‘प्रतिबद्ध-ललकार’ ग्रुप की क़ौमवादी व ट्रॉट-बुण्डवादी लाइन पहुँची तार्किक परिणति पर

सुसंगत जनवाद पर आधारित केन्द्रीयतावाद के मार्क्सवादी सिद्धान्त को ख़ारिज करने की कुत्सित कवायद के साथ ‘प्रतिबद्ध’ के सम्पादक सीधे जा बैठे बुर्जुआ संघवाद की गोद में

- **शिवानी**

जब कोई व्यक्ति या समूह अपनी विजातीय कार्यदिशा को सही साबित करने के लिए इरादतन झूठ बोले, इतिहास के दस्तावेज़ों को ग़लत और मनमाने तरीक़े से उद्धृत करे, सिद्धान्तगत प्रश्नों और ऐतिहासिक तथ्यों को *मिस्कोट* और *मिसरिप्रेज़ेन्ट* करे तो निश्चित ही विचारधारात्मक-राजनीतिक पतन की फिसलन भरी डगर पर ऐसा व्यक्ति या समूह द्रुत गति से राजनीतिक निर्वाण प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रहा होता है।

यही हालत ‘प्रतिबद्ध’ के सम्पादक सुखविन्दर और ‘प्रतिबद्ध-ललकार’ ग्रुप की हो गयी है। क़ौमी और भाषाई सवाल पर बहस में पिट जाने पर (जिस बहस के अस्तित्व को यह महोदय शुरू से ही नकारते रहे हैं, लेकिन इस पर बाद में आयेंगे) सम्पादक महोदय घटिया क़िस्म के कपट और बेईमानी पर उतर आये हैं।

अपनी क़ौमवादी, ट्रॉट-बुण्डवादी, ऑस्ट्रो-मार्क्सवादी और संघवादी लाइन को सही साबित करने के लिए इन्होंने ‘प्रतिबद्ध’ के अंक-34 के सम्पादकीय में न सिर्फ़ झूठ बोले हैं, **बल्कि सोवियत यूनियन के संविधान जैसे बेहद ज़रूरी ऐतिहासिक दस्तावेज़ को जानबूझकर ग़लत उद्धृत किया है**, ऐतिहासिक तथ्यों की मनमुआफ़िक बेतुकी व्याख्या की है और ऐतिहासिक सन्दर्भों में अपना बुर्जुआ “संघवादी” कचरा भरा है।

हम इस लेख में तफ़सील से सन्दर्भों के साथ दिखलायेंगे कि कैसे यह व्यक्ति जो एक “मार्क्सवादी” पत्रिका का सम्पादक होने का दम भरता है, वाक़ई में मार्क्सवाद को विकृत करने के कुत्सित काम में लगा हुआ है। इसके अलावा इनके नए अंक यानी ‘प्रतिबद्ध’ अंक संख्या-35 में भारत में राष्ट्रीय प्रश्न पर एक लेख प्रकाशित हुआ है

जिसमें एक बार फिर अन्तर्विरोधपूर्ण कुतर्कों, मूर्खताओं और "बौद्धिक" बेईमानी की कई मिसालें पेश की गयी हैं, जिसकी आलोचना हम जल्द ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करेंगे।

बहरहाल, फ़िलहाल अपने मौजूदा लेख में हम सप्रमाण और सोदाहरण दिखलायेंगे कि बोल्शेविक पार्टी, लेनिन व स्तालिन द्वारा सुसंगत जनवाद पर आधारित केन्द्रीयता वाले एकीकृत यूनियन के ढाँचे की राज्य-व्यवस्था के सिद्धान्त की ही हमेशा वक़ालत की गयी है और 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक द्वारा बेईमानी के साथ ज़बरदस्ती सोवियत इतिहास व राज्य-व्यवस्था का एक संशोधनवादी-संघवादी पाठ प्रस्तुत किया गया है। सोवियत यूनियन में 1918 से 1922 तक तात्कालिक वस्तुगत परिस्थितियों के मद्देनज़र एक संक्रमणकालीन नीति के तौर पर अपनाये गयी संघीय ढाँचे की व्यवस्था को यह महोदय संघवाद पर मार्क्सवादी सिद्धान्त में तब्दीली के तौर पर पेश करते हैं और इसलिए इनका आचरण संशोधनवादी व सामाजिक-जनवादियों से किसी भी रूप में भिन्न नहीं है। क़ायदे से ख़ुद को क्रान्तिकारी कहने वाले तमाम संगठनों और व्यक्तियों को मार्क्सवादी सिद्धान्त व विचारधारा व सोवियत इतिहास के इस संशोधनवादी पाठ और विकृतिकरण के विरुद्ध बोलना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्न किसी एक संगठन के मसले नहीं होते है बल्कि पूरे आन्दोलन के लिए ही विचारधारात्मक-राजनीतिक महत्व के सवाल होते हैं। लेकिन हम आज बिलकुल इसके विपरीत घटित होता हुआ देख रहे हैं। आज तमाम ऐसे "यथार्थवादी" लोग या "संगठन" (जो संगठन कम बच्चा पार्टी ज़्यादा हैं!) जो किसी न किसी वक़्त बहस में पिट चुके हैं या फिर बहस से पलायन कर चुके हैं, तमाम विजातीय प्रवृत्तियों और ग़ैर-मार्क्सवादी रुझानों के साथ, जिसमें कि 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेतृत्व की ग़ैर-सर्वहारा वर्गीय क़ौमवाद व संघवाद की कार्यदिशा भी शामिल है, अवसरवादी तरीक़े से "शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व" बनाये हुए हैं! वैसे इसमें कोई ताज्जुब की बात है भी नहीं। यह तो देर-सवेर होना ही था! क़ौमवादी नाले और कुलकवादी नाले का संगम तो होना ही था!

जैसा कि पाठकों को ज्ञात होगा कि पिछले लम्बे समय से 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व के साथ क़ौम और भाषा के सवाल पर हमारी बहस जारी है। हालांकि इस ग्रुप का नेतृत्व क्रान्तिकारी साहस के सर्वथा अभाव के चलते खुलकर यह बात कभी नहीं मानता है जिसका मुख्य कारण यह है कि इन दोनों ही सवालों पर अपनी ग़ैर-मार्क्सवादी-लेनिनवादी लाइन को वह किसी भी बहस के मंच पर सही नहीं ठहरा सकता है। हालाँकि इस ग्रुप का सरगना परोक्ष तरीक़े से अपनी दिवालिया समझदारी की ब्रॉडकास्टिंग जारी रखे हुए है। लेकिन जैसा कि हमने पहले इंगित भी किया है कि अपनी पिट चुकी ख़स्ताहाल लाइन को चूँकि इस ग्रुप का नेतृत्व कहीं सही साबित नहीं कर सकता है, इसलिए इसने बहस से भाग खड़े होने का यह नायाब तरीक़ा ढूँढ निकाला है कि बहस के अस्तित्व से ही इनकार कर दिया जाय!

इसके अलावा पिछले डेढ़ साल से ज़्यादा समय से चल रही यह बहस अब क़ौम और भाषा के सवाल तक सीमित रह नहीं गयी है। मौजूदा धनी किसान-कुलक आन्दोलन के समर्थन से लेकर धनी किसान-कुलकों की एमएसपी

की जनविरोधी मांग पर बार-बार ज़बरदस्त यू-टर्न मारने तक और फिर कोरोना महामारी पर निहायती अवैज्ञानिक जनद्रोही अवस्थिति अपनाने तक इस ग्रुप के नेतृत्व ने अपनी दिवालिया समझदारी की जो नुमाइश इतने छोटे से अंतराल में कर डाली है, वह वाक़ई अचम्भित करने वाली है!

और इसमें भी कोई ताज्जुब की बात नहीं होगी कि क़ौमी मसले पर इस ग्रुप की संघवादी लाइन इन्हें जल्द ही सांगठनिक मसलों पर भी जनवादी केन्द्रीयता के उसूल को ख़ारिज करने या उसका भी संशोधनवादी पाठ करने तक ले जायेगी। जिस संगठन का नेतृत्व क़ौमी मसले पर संघवाद की गोद में बैठ चुका है वह, आज नहीं तो कल, सांगठनिक प्रश्न पर भी बुण्डवादी संघवाद की ग़ैर-लेनिनवादी कार्यनीति की ओर ही जायेगा, जिसकी तरफ़ इस पत्रिका के सम्पादक ने क़ौमी सवाल पर अपने पिछले लेख में इशारा भी किया था और पार्टी के संघवादी ढांचे की बात कहते-कहते रह गया था। ऐसा प्रतीत होता है स्तालिन ने निम्न शब्द 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक को ही ध्यान में रखते हुए कहे थे:

> "Whether the Caucasian Liquidators will take "a step forward" and follow in the footsteps of the Bund on the question of organisation also, the future will show. **So far, in the history of Social-Democracy federalism in organisation always preceded national autonomy in programme.** The Austrian Social-Democrats introduced organisational federalism as far back as 1897, and it was only two years later (1899) that they adopted national autonomy. The Bundists spoke distinctly of national autonomy for the first time in 1901, whereas organisational federalism had been practised by them since 1897.
>
> "**The Caucasian Liquidators have begun from the end, from national autonomy. If they continue to follow in the footsteps of the Bund they will first have to demolish the whole existing organisational edifice, which was erected at the end of the 'nineties on the basis of internationalism.**" (Stalin, **Marxism and National Question**)

स्तालिन की यह बात हमारे ट्रॉट-बुण्डवादियों यानी 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप पर शब्दश: लागू होती है।

'प्रतिबद्ध' के सम्पादक द्वारा सोवियत यूनियन के इतिहास का भोंडा और बेईमानी भरा विकृतिकरण

किसी भी राजनीतिक-विचारधारात्मक बहस में आप विरोधी पक्ष से अपेक्षा करते हैं कि वह बहस में ईमानदारी के साथ आचरण करे। आप यह भी उम्मीद करते हैं कि अपने ग़लत (कु)तर्कों को सही साबित करने के लिए वह

तथ्यों और इतिहास को तोड़ेगा-मरोड़ेगा नहीं, ग़लतबयानी नहीं करेगा व झूठ नहीं बोलेगा। और ज़ाहिरा तौर पर अगर बहस कम्युनिस्ट संगठनों के बीच हो तो यह क्रान्तिकारी नैतिकता का भी प्रश्न बनता है कि आप तथ्यों के साथ कोई फ़ेर-बदल न करें और झूठ तो कतई न बोलें।

लेकिन क़ौमवाद और अन्य प्रश्नों पर चली बहसों में, जिसमें कि मौजूदा धनी किसान आन्दोलन और लाभकारी मूल्य का सवाल प्रमुख है, पिट जाने के बाद 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व ने यह साबित कर दिया है कि जहाँ तक कम्युनिस्ट ईमानदारी का प्रश्न है, तो अब इसका भी क्षरण हो चुका है। इसका एक प्रातिनिधिक उदहारण इनकी पत्रिका 'प्रतिबद्ध' के अंक-34 के सम्पादकीय में देखने को मिलता है।

अपनी क़ौमवादी, ट्रॉट-बुण्डवादी और संघवादी कार्यदिशा को सही सिद्ध करने के लिए इस पत्रिका के सम्पादक महोदय अब झूठ और ग़लतबानियों का सहारा ले रहे हैं। **इस अंक के सम्पादकीय में इन जनाब ने सोवियत यूनियन को संघवादी बनाने के लिए सफ़ेद झूठ बोलने के सभी रिकॉर्ड ध्वस्त कर दिए हैं! चूँकि यह सोवियत यूनियन के इतिहास से अपनी संघवादी लाइन के समर्थन में कुछ ढूँढ कर नहीं ला पाए थे तो इस बार इन्होंने सोवियत यूनियन के इतिहास और संविधान को ही बदल डाला है!** सम्पादक महोदय को पूरा भरोसा है कि इनका काडर मौलिक अध्ययन तो करेगा नहीं, तो अपनी मरी-गिरी क़ौमवादी-संघवादी लाइन को साबित करने के लिए कुछ भी ग़लत-सलत लिख दो, ताकि तोतारटन्त "ज्ञान" की तरह इनके द्वारा गढ़े गये क़ौमवादी-संघवादी तर्कों को बस इनकी भक्त-मण्डली दुहरा दे और एक भयंकर सर्वहारा-विरोधी कार्यदिशा पर टांग दौड़ाते रहे। लेकिन, अफ़सोस अभी अन्य लोगों ने मार्क्सवाद का अध्ययन करना छोड़ा नहीं है!

इसमें भी कोई ताज्जुब नहीं कि आजकल इस ग्रुप की संघवाद पर जो कार्यदिशा आ रही है वह तमाम बुर्जुआ पार्टियों, संशोधनवादियों, सामाजिक-जनवादियों, तमाम क़िस्म के लिबरलों, बुर्जुआ कलमनवीसों, पत्रकारों का प्रिय शगल है क्योंकि संघवाद का ऐसा कोई भी अनालोचनात्मक जश्न न केवल वर्ग विश्लेषण से रिक्त है बल्कि कम्युनिस्ट दृष्टिकोण के भी सर्वथा विपरीत है। इनमें से बहुतेरे भारत में फ़ासीवाद को इसी संघवाद (federalism) की ज़मीन से शिक़स्त देना चाहते हैं! इसी वजह से आजकल ममता बैनर्जी संघवाद की "पोस्टर गर्ल" बनी हुई है! कुछ समय पहले तक उद्धव ठाकरे भी इनके "पोस्टर बॉय" थे! इस संघवादी समझदारी का वर्ग चरित्र इनके तथाकथित 'चैम्पियनों' की राजनीति और विचारधारा देखकर ही समझ आ जाता है। **'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महाशय संघवाद के इन्हीं दीवानों की लाइन में सबसे आख़िरी में खड़े हैं और उन्हें कोई पूछ भी नहीं रहा है!**

सम्पादकीय में वैसे तो कई अन्य मसले भी हैं जिनपर तफ़सील से चर्चा की ज़रुरत है, क्योंकि इन तमाम मसलों पर इन्होंने अपनी पुरानी अवस्थितियों से या तो पलटी मारी है या फिर अपने कुतर्कों को दुहराया ही है, लेकिन हम शुरुआत इनके द्वारा इस बार बोले गये नये झूठों, फ़रेबों और ग़लतबयानियों को उजागर करने से करेंगे।

'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महोदय ने मार्क्सवाद से क़ौमवाद की ओर ऐसी छलांग मारी है कि इनके रहे-सहे समर्थक भी हैरान-परेशान घूम रहे हैं! **संघवाद का नारा बुलन्द करते हुए यह जनाब इस मुक़ाम पर पहुँच गए हैं कि इन्होंने समाजवादी सोवियत यूनियन के इतिहास का भी विकृतिकरण कर डाला है और उसके विषय में झूठों की झड़ी-सी लगा दी है।** बताते चलें कि इन्होंने केन्द्रीयतावाद पर मार्क्सवादी सैद्धान्तिकी को पहले ही कचरा पेटी के हवाले कर दिया था, वैसे ही जैसे क़ौमी सवाल पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी नज़रिये को छोड़कर बुण्डवादी-क़ौमवादी नज़रिया अपना लिया था, जिसकी आलोचना हम पहले ही पेश कर चुके हैं और जिसे आप यहाँ पढ़ सकते हैं-

http://ahwanmag.com/archives/7655

http://ahwanmag.com/archives/7594

हमने अपनी उपरोक्त आलोचना में जिस प्रवृत्ति को इनके "संघवाद पर बहके-बहके विचार" की संज्ञा दी थी, उन बहके विचारों ने प्रस्तुत सम्पादकीय में तार्किक पूर्णता हासिल कर ली है और मार्क्सवादी विचारधारा से इनके पथभ्रष्ट हो जाने और विपथगमन की प्रक्रिया को और मज़बूती प्रदान कर दी है। जिस तरह से तमाम संशोधनवादी और सामाजिक-जनवादी पार्टियों ने राज्य और क्रान्ति की थीसिस में संशोधन करके उसे दन्त-नखविहीन बना दिया है, 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक वही काम मार्क्सवादी-लेनिनवादी जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्त के साथ कर रहे हैं और मार्क्स से लेकर लेनिन और स्तालिन को बतौर 'एक आम पेटी-बुर्जुआ संघवादी' पेश कर रहे हैं।

जैसा कि हमने ऊपर भी रेखांकित किया है आज इनकी जो कार्यदिशा विभिन्न क़ौमों द्वारा संघवाद के उसूल पर एक राज्य के मातहत संघटित होने के सिद्धान्त के रूप में सामने आ रही है, जो कि कत्तई मार्क्सवाद-विरोधी अवस्थिति है, वह आगे चलकर सांगठनिक प्रश्नों के मामले में भी सामने आएगी और एक मायने में आ भी चुकी है। अपने पूर्ण रूप में सांगठनिक मामलों में यह खुलकर कब सामने आएगी यह तो वक़्त बतायेगा लेकिन जिस गति से यह ग्रुप यहाँ तक आ पहुँचा है कोई ताज्जुब नहीं कि आगे की विचारधारात्मक विपथगमन की यात्रा भी यह जल्दी ही तय करे।

इस बार इस ग्रुप का नेतृत्व अपनी पिछली अवस्थिति से और दो क़दम आगे चला गया है और इस करतूत को अंजाम देते हुए इन्होंने अपनी पत्रिका के सम्पादकीय में सोवियत यूनियन को 'फ़ेडरेशन' घोषित कर डाला है!

और यह साबित करने के लिए इन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों और दस्तावेज़ों तक को नहीं बख्शा है। **सोवियत यूनियन के संविधान से मिस्कोट करके, झूठे सन्दर्भ पेश करके, बौद्धिक बईमानी का परिचय देते हुए सम्पादक महोदय ने अपनी क़ौमवादी-संघवादी कार्यदिशा के हिसाब से नतीजे निकाले हैं।** लेकिन इन्हें ससंदर्भ उद्धृत करने के बावजूद हम जानते हैं कि इनकी बची-खुची भक्त मण्डली क्या कहेगी- यही, कि *हमने* सन्दर्भ से काटकर इनके उद्धरण पेश किये हैं और मनमाने ढंग से इनकी व्याख्या की है! इसलिए हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे स्वयं भी इनका यह अंक ज़रूर पढ़ें, जिसमें मौलिक लेखन के नाम पर इक्का-दुक्का लेखों के अलावा कुछ नहीं है और साथ ही हम सारे मूल उद्धरण पेश कर रहे हैं, जिसे सारे पाठक स्वयं परख सकते हैं और देख सकते हैं कि 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक सुखविन्दर ने किस प्रकार सोवियत संविधान से उद्धरणों को बदलकर पेश किया है। इसलिए सबसे पहले हम यह देखेंगे कि 'यूनियन' और 'फ़ेडरेशन' के सवाल पर इस ग्रुप के नेतृत्व ने क्या-क्या झूठ बोले हैं और इतिहास को किस तरह से विकृत करके पेश किया है।

संघवाद बनाम सुसंगत जनवाद पर आधारित केन्द्रीयता व एकीकरण: मार्क्सवादी दृष्टिकोण

हमने पहले भी बताया था कि संघवाद (federalism) के विषय में मार्क्सवादी-लेनिनवादी अवस्थिति एकदम स्पष्ट है। **मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन व स्तालिन राज्य-व्यवस्था के संघटन के मामले में भी सुसंगत जनवाद पर आधारित जनवादी केन्द्रीयता (democratic centralism) के हिमायती थे। वे संघवाद के विरोधी थे।** लेनिन यह भी स्पष्ट करते हैं कि विशेष तौर पर पूँजीवाद के अन्तर्गत संघीय ढाँचे की माँग अनैतिहासिक और प्रतिक्रियावादी है क्योंकि यह पूँजीवाद के विकास को अवरुद्ध करती है और सर्वहारा वर्ग का वर्ग संघर्ष भी पूँजीवादी विकास के साथ तीव्रतम और उन्नततर रूप ग्रहण करता है। साथ ही, लेनिन यह भी बताते हैं कि यह केन्द्रीयता सुसंगत जनवाद के साथ एक जनवादी केन्द्रीयता के उसूलों पर बनी होनी चाहिए।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि 1918 से 1922 की जिस कालावधि में *औपचारिक तौर पर* संघीय ढांचे की व्यवस्था रूस व अन्य भूतपूर्व दमित राष्ट्रों के बीच लागू हुई, वह पूर्ण एकीकरण की प्रक्रिया का एक चरण मात्र था, जो प्रक्रिया पहले तमाम गणराज्यों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध (treaty alliance) से होते हुए संघीय ढाँचे की संक्रमणकालीन व्यव्यस्था का रूप अख्तियार करते हुए अन्ततोगत्वा एकीकृत यूनियन पर आकर समाप्त होती है, जिसमें नाम के लिए संघीय ढाँचा मौजूद था, लेकिन वास्तव में उसमें कुछ भी संघीय नहीं था, बल्कि वह सुसंगत जनवाद पर आधारित एक बेहद केन्द्रीकृत व्यवस्था थी। यह भी स्पष्ट करते चलें कि जिस संक्रमण के

दौर में सोवियत रूस ने संघीय ढाँचे की व्यवस्था का इस्तेमाल भी किया, वह महज़ औपचारिक था और उसका उस बुर्जुआ संघीयता से कोई रिश्ता नहीं था, जिसकी पिपहरी बजाते हुए सुखविन्दर घूम रहे हैं, जैसा कि हम आगे देखेंगे। *उस दौर में भी सभी महत्वपूर्ण मसलों पर, जैसे कि बजट व आर्थिक मसले, सामरिक व सैन्य मसले, विदेश मसले, न्यायिक मसलों आदि पर अखिल-रूसी केन्द्रीय कांग्रेस, जो की केन्द्रीय सत्ता का प्रतिनिधित्व करती थी, ही सभी फ़ैसले लेती थी।*

दिसम्बर 1922 के बाद तो यह औपचारिकता भी ख़त्म हो चुकी थी जब सोवियत यूनियन के गठन के साथ एक एकीकृत राज्य व्यवस्था अस्तित्व में आती है और अखिल-यूनियन संविधान के मातहत आर्थिक, प्रशासनिक, मौद्रिक, सैन्य, न्यायिक आदि सभी महत्वपूर्ण प्रकार्य आते थे और जिसको लेकर 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक ने काफ़ी झूठ बोले हैं।

यहाँ तक कि 1923 में ही पूरे यूनियन की *एक साझा नागरिकता* भी अस्तित्व में आ गयी थी! यदि सोवियत यूनियन या स्तालिन के 1923 के बाद के लेखन पर गौर किया जाए तो हम पाते हैं कि "संघवाद" शब्द का इस्तेमाल पूरी तरह से ख़त्म हो गया था और केवल यूनियन का इस्तेमाल किया जाने लगा था। 1924 के स्तालिन के एक फुटनोट को सन्दर्भों से काटकर 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक ने अपने पिछले लेख "राष्ट्रीय प्रश्न और मार्क्सवाद" पर काफ़ी चिल्ल-पों मचाते हुए ढिंढोरा पीटा था कि स्तालिन ने संघवाद के सवाल पर बोल्शेविक पार्टी की नीति बदल डाली थी, लेकिन सच यह है कि उस फुटनोट में भी स्तालिन अतीत की संक्रमणकालीन नीति (1918-1922) की बात कर रहे हैं क्योंकि 1924 में सोवियत यूनियन को अस्तित्व में आये हुए एक साल से भी अधिक समय हो गया था! लेकिन इस पर बाद में आयेंगे। सोवियत इतिहास में "संघवाद" या "संघीय ढाँचे" का वह अर्थ था ही नहीं जैसा कि बुर्जुआ अर्थों में इससे जुड़ा होता है और 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप का नेतृत्व सोवियत इतिहास पर आरोपित करने की कोशिश कर रहा है। किसी भी अर्थ में सोवियत यूनियन में संघीय ढांचे का *वास्तव में* कुछ भी नहीं बचा था जैसा कि हम आगे देखेंगे और यह महज़ एक औपचारिक वस्तु बनकर रह गया था।

रूस में क्रान्ति के बाद कुछ समय के लिए, जिसे कि संक्रमणकालीन अवधि कहा गया था, रूस के तमाम भूतपूर्व दमित राष्ट्रों के सम्बन्ध में संघीय ढाँचे की नीति को औपचारिक तौर पर अपनाया गया था। क्रान्ति के बाद 1918 से 1922 तक समाजवादी रूस को रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी गणराज्य (Russian Soviet Federative Socialist Republic; RSFSR) कहा गया जिसे दिसम्बर 1922 में बदलकर सोवियत समाजवादी गणराज्यों की यूनियन (Union of Soviet Socialist Republics; USSR) कर दिया गया, जब इसमें अन्य गणराज्य भी शामिल हुए। **ज़ाहिर है कि संघात्मक ढाँचे की यह नीति एक छोटे कालखण्ड के लिए अपनायी गयी**

थी, और यह तात्कालिक वस्तुगत परिस्थितियों के मद्देनज़र अपनायी गयी एक नीति मात्र थी, कोई सैद्धान्तिक परिवर्तन नहीं था जैसा कि 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महोदय का अहमकाना दावा है। यह नीति भी तात्कालिक तौर पर इसीलिए अपनायी गयी थी ताकि यूनियन के गठन को सुदृढ़ किया जा सके और दमित राष्ट्रों के जनसमुदायों का भरोसा अर्जित किया जा सके। यह बोल्शेविक पार्टी का सकारात्मक प्रस्ताव नहीं था, बल्कि एक मध्यवर्ती क़दम था जिसके ज़रिये जनवादी केन्द्रीयता पर आधारित पूर्ण यूनियन की ओर बढ़ा जा सके। अन्त में यही हुआ भी, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

समाजवाद के अन्तर्गत तमाम ऐसी अवधारणाओं के मायने ही बदल जाते हैं जो कि पूँजीवादी व्यवस्था में भी प्रचलन में होते हैं। समाजवाद के अंतर्गत जनवाद का वह अर्थ नहीं रह जाता है जो कि पूँजीवाद के अंतर्गत होता है। समाजवाद के तहत अधिनायकत्व का भी वह अर्थ नहीं होता है जो कि पूँजीवाद के तहत तानाशाही का होता है। इसके अलावा उजरती व्यवस्था समाजवाद में एक अलग रूप अख्तियार कर लेती है क्योंकि उसका रूप और अन्तर्वस्तु दोनों ही बदल जाते हैं, भले ही अभी भी उजरत की व्यवस्था बनी रहती है। कोई हद दर्जे के बुर्जुआ लिबरल ज्वर से ग्रस्त दिमाग़ ही ऐसी बात सोच सकता है कि समाजवाद के तहत उजरत की व्यवस्था अपने पूंजीवादी स्वरुप में विद्यमान रहती है।

ठीक इन्ही अर्थों में अगर समाजवादी सोवियत यूनियन बनने तक की पूरी ऐतिहासिक प्रक्रिया को उसके राजनीतिक-ऐतिहासिक सन्दर्भ में अवस्थित करके देखा जाये तो सोवियत यूनियन बनने से पहले के दौर में भी हम पाते हैं कि 'फ़ेडरेशन' जैसे शब्द के पीछे के मायने या स्वरुप ही बदल चुके थे और आर.एस.एफ.एस.आर. में भी फ़ेडरेशन जैसा ज़्यादा कुछ था भी नहीं। वास्तव में स्तालिन द्वारा संघवाद पर लिखे गये लेख के अन्त में 1924 में जोड़े गए फुटनोट में स्तालिन ठीक यही कह रहे हैं कि संघीय ढांचे का अर्थ ही हमारे लिए समाजवादी संक्रमण में बदल चुका है। यह बुर्जुआ संघीय ढांचे से बिल्कुल भिन्न है। इसमें कुछ भी संघीय नहीं रह गया है और यह हमारे लिए पूर्ण यूनियन की ओर एक मध्यवर्ती क़दम से ज़्यादा कुछ नहीं है। जब हम 1924 और 1936 के सोवियत संविधानों में केन्द्रीय राज्यसत्ता और यूनियन में शामिल गणराज्यों के सम्बन्धों पर निगाह डालते हैं, तो यह बात साफ़ हो जाती है कि सोवियत संघ की राज्य संरचना सुसंगत जनवाद पर आधारित एक केन्द्रीकृत यूनियन की थी। सुखविन्दर ने 1936 के सोवियत संविधान के एक उद्धरण को बेईमानीपूर्ण तरीक़े से बदलकर पेश किया है, जिससे कि वह इसके विपरीत सिद्ध कर सकें। उस पर हम आगे आएंगे और मूल उद्धरण पेश करके क़ौमवादियों के इस सरगना की इस बेईमानी को उजागर करेंगे।

हालाँकि पूंजीवादी राज्यों में भी शुद्ध 'फ़ेडरेशन' जैसी कोई चीज़ मिलती नहीं है, जैसा कि हम स्तालिन के हवाले से आगे दिखायेंगे भी। *एक संक्रमणकालीन व्यवस्था के तौर पर भी सोवियत यूनियन में जिस छोटे कालावधि में 'फ़ेडरेशन' की व्यवस्था की बात की गयी थी, उस कालावधि में भी इसका स्वरुप बुर्जुआ अर्थों से पूरी तरह भिन्न था।* संघीय ढाँचे का सोवियत इतिहास में मुख्यतः और मूलतः अर्थ सत्ता के विकेन्द्रीकरण से था,

जोकि सोवियतों के ढाँचे में स्पष्ट तौर पर दिखलाई भी पड़ता है। लेकिन 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक को इस इतिहास से कोई लेना-देना नहीं है! बल्कि सम्पादक महोदय इतिहास का उपयोग, या यह कहना ज़्यादा सटीक होगा कि उसका दुरुपयोग सिर्फ उसे तोड़ने-मरोड़ने के लिए और ऐतिहासिक तथ्यों को झुठलाने के लिए करते हैं।

1922 में सोवियत यूनियन के बनने के तत्काल बाद भी संघीयता के तत्व नाम-मात्र के लिए और औपचारिक तौर पर (nominally and formally) सोवियत यूनियन के ढाँचे में बचे हुए थे और उसमें अब **एकीकृत यूनियन व केन्द्रीयता का तत्व** प्रधान बन गया था, जो कि समय के साथ बढ़ता गया। जो भी हो, संघ का निर्माण मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों का सकारात्मक प्रस्ताव (positive proposal) कभी नहीं होता है, चाहें उन्हें स्वयं भी ठोस परिस्थितियों द्वारा उपस्थित ऐतिहासिक सीमाओं के चलते कुछ समय के लिए संघीय ढाँचे को अपनाना पड़ा हो। क्योंकि मार्क्सवादियों का सकारात्मक प्रस्ताव चाहे कुछ भी हो, लेकिन जब कई गणराज्य साथ आते हैं, तो उनके राज्य का संगठनात्मक सिद्धान्त क्या होगा यह जनवादी रूप से तय होता है न कि कम्युनिस्टों की इच्छाओं से।

पाठकों को एक बार फिर से याद दिला दें कि 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक ने 'प्रतिबद्ध' संख्या-33 में प्रकाशित अपने लेख 'राष्ट्रीय प्रश्न और मार्क्सवाद' में संघवाद के प्रति अपनी दीवानगी को ज़ाहिर करते हुए बताया था कि स्तालिन ने 1924 में संघवाद को लेकर बोल्शेविक पार्टी की नीति बदल दी थी। हमने उस वक़्त भी इस मूर्खतापूर्ण दावे का खण्डन करते हुए लिखा था:

> **"सुखविन्दर बिना कहे ऐसी तस्वीर पेश करना चाहते हैं कि स्तालिन ने 1924 में संघवाद के बारे में अपने विचार बदल लिये थे। आइये देखते हैं कि सुखविन्दर के इस दावे में कुछ दम है, या उनकी समझ में ही नहीं आया है कि स्तालिन क्या कह रहे हैं।**
>
> "हम जानते हैं कि सुखविन्दर न सिर्फ़ ग़लत कार्यदिशा पेश करने में बौद्धिक बेईमानी का परिचय देते हैं, बल्कि कई जगह वह सच में नहीं समझ पाते हैं कि जो उद्धरण उन्होंने पेश किया है, उसमें कहा क्या गया है। जल्द ही हम सुखविन्दर के एक अन्य व्याख्यान की लिखित आलोचना पेश करेंगे जो उन्होंने पंजाब के एक बुद्धिजीवी जगरूप की कुछ प्रस्थापनाओं पर दिया था। यह व्याख्यान सुनकर आप समझ जायेंगे कि जिस रुझान का नेतृत्व सुखविन्दर कर रहे हैं, उन्हें हमने अपढ़ "मार्क्सवादी" क्यों कहा था।
>
> "खैर, अभी देखते हैं कि सुखविन्दर ने स्तालिन को किस प्रकार संघवादी बनाया। सुखविन्दर जानबूझकर स्तालिन के 1917 के लेख **'संघवाद के विरुद्ध'** में 1924 में उनके द्वारा लगाये गये एक फुटनोट के आधार पर ऐसा दिखलाने का प्रयास कर रहे हैं कि मानो मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त

में संघवाद और केन्द्रीयतावाद को लेकर अवस्थिति बदल गयी हो। **जबकि उस फुटनोट में भी स्तालिन यही कह रहे हैं कि यह एक संक्रमणकालीन नीति है और इसके लिए वही कारण गिना रहे हैं जो ऊपर लेनिन ने बताये थे।** सुखविन्दर एक संक्रमणकालीन दौर में अपनायी गयी नीति को मार्क्सवाद-लेनिनवाद में सैद्धान्तिक बदलाव के रूप में प्रस्तुत करना चाह रहे हैं जबकि ऐसा कोई बदलाव सिद्धान्त में किया ही नहीं गया था और न ही आज किया जा सकता है। आइये देखते हैं कि स्तालिन ने 1924 के फुटनोट में वास्तव में क्या कहा है:

““इस प्रकार पार्टी ने **फ़ेडरेशन के नकार से “विभिन्न राष्ट्रों की मेहनतकश आवाम की पूर्ण एकता के लिए एक संक्रमणशील रूप” के रूप में फ़ेडरेशन की मान्यता की यात्रा** तय की, जिसे कि कोमिण्टर्न की दूसरी कांग्रेस ने मान्यता भी दी।

““हमारी पार्टी के विचारों में इस उद्भव के तीन कारण बताये जा सकते हैं।

““पहला, यह तथ्य कि अक्टूबर क्रान्ति के समय रूस की कई राष्ट्रीयताएँ वास्तव में एक-दूसरे से *पूर्ण विलगाव व पूर्ण अलगाव* की स्थिति में थीं, और *इस दृष्टि से, फ़ेडरेशन इन राष्ट्रीयताओं में मेहनतकश आवाम के विभाजन से उनके क़रीबी यूनियन, उनके मिश्रण की ओर एक अगला क़दम था।*

““दूसरा, यह तथ्य कि फ़ेडरेशन के **जिन रूपों** को सोवियत विकास ने निर्दिष्ट किया, वे किसी भी रूप में रूस की राष्ट्रीयताओं के बीच क़रीबी आर्थिक एकता के साथ कोई अन्तरविरोध नहीं रखते थे, जैसा कि पहले लगता था, और इस लक्ष्य को काटते नहीं थे, जैसा कि व्यवहार में आगे प्रदर्शित हुआ।

““तीसरा, यह तथ्य की राष्ट्रों के मिश्रण में राष्ट्रीय आन्दोलन पहले यानी युद्ध के पहले या अक्तूबर क्रान्ति से पहले के दौर में, *जितना हमें लगता था, उससे कहीं ज़्यादा वज़नदार कारक सिद्ध हुए और राष्ट्रों के मिश्रण की यह प्रक्रिया कहीं ज़्यादा जटिल रूप में सामने आयी।”* (स्तालिन, **संघवाद के विरुद्ध**, *फुटनोट, ज़ोर हमारा*)

“जैसा कि आप देख सकते हैं स्तालिन स्पष्ट तौर पर कह रहे हैं कि **कम्युनिस्टों के लिए हर सूरत में सकारात्मक प्रस्ताव यूनियन होता है, फ़ेडरेशन नहीं, जिसे कि स्थितियों द्वारा उपस्थित सीमाओं के कारण एक संक्रमणशील क़दम के तौर पर अपनाया जा सकता है,** यानी राष्ट्रों के पूर्ण विलगाव की तुलना में उपलब्ध एक बेहतर विकल्प, लेकिन यह मार्क्सवादियों का सिद्धान्त नहीं होता।

“दूसरी बात, जो कि स्तालिन इस फुटनोट में कह रहे हैं वह यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत संघ की माँग करना और समाजवाद आने के बाद एक संक्रमणशील अवस्था के रूप में तमाम क़ौमों की आपसी सहमति से संघीय ढाँचे का बनना, अलग चीज़ें हैं और सोवियत समाजवादी अनुभव ने दिखलाया है कि ऐसी सूरत में संघ के कुछ विशिष्ट रूप पैदा हो सकते हैं जो निश्चित स्थितियों में समाजवाद के उसूलों के ख़िलाफ़ नहीं भी जा सकता है। आज भी सोवियत संघ के अध्येताओं में लगभग-लगभग इस बात को लेकर आम सहमति है कि 1930 के दशक से ही संघीयता का तत्व सोवियत संघ में लुप्तप्राय हो चुका था, हालांकि क्षेत्रीय स्वायत्तता तमाम क्षेत्रों को मिली हुई थी। लेकिन हम सभी जानते हैं कि संघीयता और क्षेत्रीय स्वायत्तता एक चीज़ नहीं है, बल्कि क्षेत्रीय स्वायत्तता यूनियन के लेनिनवादी जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्त का अविभाज्य अंग है। जो भी हो, इसका पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत संघ की माँग उठाने से दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं है, जैसा कि सुखविन्दर कर रहे हैं। लेनिन ने पूँजीवाद के मातहत संघ की माँग को प्रतिक्रियावादी बताया था क्योंकि संघीय ढाँचा पूँजीवादी विकास को अवरुद्ध करता है और विभिन्न क़ौमों के सर्वहारा वर्ग के बीच भी पार्थक्य पैदा करता है। यही कारण है कि संघीय ढाँचा आम तौर पर सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष को उन्नततर धरातलों पर विकसित करने के रास्ते में एक बड़ी बाधा है और इसी वजह से पूँजीवादी व्यवस्था के मातहत संघ की माँग सीधे-सीधे प्रतिक्रियावादी माँग है।

“और तीसरा कारण स्पष्ट तौर पर स्तालिन की इस मान्यता को दिखला रहा है कि राष्ट्रीय आन्दोलनों और राष्ट्रवाद की जनता में पकड़ को पहले कम करके आँका गया था। यह राष्ट्रवादी भावना सोवियत संघ बनने के बाद भी लगातार समाजवादी नीतियों के साथ एक घर्षण पैदा करती रहती थी। इस रूप में कम्युनिस्टों के आकलन और इच्छा के विपरीत राष्ट्रवादी भावना वस्तुगत तौर पर अपेक्षा से अधिक उत्तरजीवी सिद्ध हुई। लेकिन स्तालिन के लिए यह इतिहास में अनिवार्यता के तत्व को निर्दिष्ट कर रहा था, न कि स्वतन्त्रता या चयन के तत्व को। इसे मार्क्सवादी सिद्धान्त बना देना किसी बौद्धिक जोकर की ही क़रामात हो सकती है।

“समाजवादी व्यवस्था के मातहत भी संघीय ढाँचा कोई कम्युनिस्ट प्रस्ताव नहीं है। यदि किसी बहुराष्ट्रीय देश में समाजवादी क्रान्ति हो, तो वहाँ के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी अपनी तरफ़ से संघ बनाने का प्रस्ताव नहीं रखेंगे, बल्कि अपनी तरफ़ से **वे समेकित केन्द्रीकृत ढाँचे वाली ऐसी राज्यसत्ता के निर्माण की वक़ालत करेंगे, जो कि जनवादी केन्द्रीयता पर आधारित हो; एक ऐसी व्यवस्था जिसमें कि शुद्धत: स्थानीय मसलों पर क्षेत्रीय स्वायत्तता, सभी क़ौमों व भाषाओं की बराबरी, और सुसंगत जनवाद के साथ एक केन्द्रीकृत राज्यसत्ता हो।** इसके बाद, ऐसा समाजवादी देश सभी क़ौमों की आपसी रज़ामन्दी से कौन-सा ढाँचा अपनाता है, यह पूर्ण जनवादी तरीक़े से ही तय होगा। **ऐसे में, कम्युनिस्ट**

एक संक्रमणशील अवस्था के तौर पर संघीय ढाँचे को स्वीकार कर सकते हैं, हालांकि वे अपना लक्ष्य लेनिन द्वारा बताये गये जनवादी केन्द्रीयता के ढाँचे को ही रखते हैं और उसी के लिए काम करते हैं। और साथ ही समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत संघीयता का स्वरूप भी वह नहीं होता, जो कि एक पूँजीवादी व्यवस्था के तहत होता है।

"इसलिए 1924 में लिखे गये फुटनोट के अनुसार, स्तालिन संघवादी नहीं हो गये थे। अगर सुखविन्दर को ऐसा लगता है, तो उन्हें फुटनोट को और उस लेख को दोबारा पढ़ लेना चाहिए। **एक संक्रमणशील अवस्था को मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त घोषित करके सुखविन्दर एक बार फिर से अपने ही द्वारा पेश सन्दर्भों व उद्धरणों को समझ पाने में अपनी अक्षमता का परिचय दे रहे हैं। यह वैसा ही कहना हुआ कि नेप (New Economic Policy) की नीति जो सोवियत संघ ने 1921 में एक छोटे दौर के लिए अपनायी थी, जिसमें कुछ समय के लिए निजी पूँजी और छोटे मालिकाने को कुछ छूटें दी गयी थीं, मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों का और समाजवाद का कोई आम सिद्धान्त है।"** (शिवानी, **राष्ट्रीय प्रश्न पर 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक का लेख: मार्क्सवाद औरराष्ट्रीय प्रश्न पर चिन्तन के नाम पर बुण्डवादी राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय कट्टरपन्थ और त्रॉत्स्कीपन्थ में पतन की त्रासद कहानी**)

पाठक देख सकते हैं कि तब हमने 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक को सन्देह का लाभ देते हुए कहा था कि इस बात की भी सम्भावना है कि सम्पादक महोदय स्तालिन के उद्धरण का सन्दर्भ और मतलब नहीं समझ पाये हैं। लेकिन इस बार इन महाशय ने इस बात की पुष्टि स्वयं कर दी है कि बात महज़ समझदारी के अभाव की नहीं है (जो कि किसी 'कम्युनिस्ट' में निश्चित ही हो सकती है) बल्कि बात यहाँ सही इरादे और क्रान्तिकारी नैतिकता के अभाव की है (जो कि किसी भी 'कम्युनिस्ट में अक्षम्य है)।

आइये अब सबसे पहले देख लेते हैं कि इस बार 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेता महोदय ने संघवाद से बढ़ती अपनी नज़दीकियों को किस प्रकार से "सैद्धान्तिक" जामा पहनाया है। हालाँकि दिक्क़ततलब बात यह है कि 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक ने यह काम राष्ट्रीय प्रश्न और संघवाद के प्रश्न पर मार्क्सवादी राजनीतिक साहित्य का अध्ययन और सोवियत यूनियन के इतिहास का अध्ययन किये बिना ही अंजाम दिया है। लेकिन सम्पादक महोदय के समर्थन में एक बात हमेशा काम कर जाती है और वह यह है कि इनके पीछे-पीछे चलने वाली इनकी छोटी-सी भक्त मण्डली मार्क्सवाद के अध्ययन जैसी मामूली चीज़ पर वक़्त ज़ाया करने में यक़ीन नहीं रखती है! और सम्पादक महोदय अपनी भक्त मण्डली को "ललकारते" हुए इस प्रकार के आचरण की ताईद लगातार अपनी फेसबुक पोस्टों के ज़रिये भी करते रहते हैं कि- "पढ़ोग-लिखोगे तो बनोगे ख़राब और दिमाग़ दौड़ाने की जगह सिर्फ टांग दौड़ाते रहोगे तो बनोगे असली वाले "इन्क़लाबी" जनाब!"

खैर, जब इस मण्डली का सरगना ही अध्ययन के मामले में निल बटे सन्नाटे का परिचय आये दिन देता रहा हो, अपनी क़ौमवादी और संघवादी लाइन के समर्थन में बुर्जुआ अखबारों और क़लमघसीटों की शरण में जाता रहा हो, तो उसके शागिर्दों से अध्ययन की उम्मीद करना भी कुछ ज़्यादा हो जायेगा! बहरहाल, अब देखते हैं कि संघवाद पर अपनी ग़ैर-मार्क्सवादी अवस्थिति को सही ठहराने के लिए सम्पादक जी ने इस बार क्या "बौद्धिक" पराक्रम दिखायें हैं।

संघवाद और एकीकृत यूनियन के प्रश्न पर सोवियत यूनियन के इतिहास के सम्बन्ध में 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व की चौकाने वाली ग़लतबयानी और झूठ

सबसे पहले सम्पादक महोदय के मुंह से ही सुन लेते हैं कि इस विषय पर उनका क्या कहना है-

> "समाजवादी सोवियत यूनियन ने भी बहु-क़ौमी रूस में क़ौमों के मुद्दों को इसी तरह से हल किया था। **रूसी क्रान्ति के समय तक बोल्शेविक पार्टी पहले एकात्मक ढांचे की ही समर्थक थी, परन्तु क्रान्ति के बाद की घटनाओं में ज़मीनी हक़ीक़तों को समझते हुए बोल्शेविक पार्टी ने अपनी नीति बदल ली थी।** पहली बार यह अवस्थिति जनवरी 1918 में मेहनतकश और शोषित लोगों के अधिकारों की घोषणा में, जिसे लेनिन ने लिखा था और पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने पारित किया था, प्रकट हुआ। इस घोषणा के अनुसार, "रूस का सोवियत गणराज्य आज़ाद क़ौमों की आज़ाद यूनियन के सिद्धान्त पर स्थापित किया गया है, जो कि सोवियत क़ौमी गणराज्यों का संघ है।
>
> "बोल्शेविक पार्टी ने अपनी आठवीं कांग्रेस (1919) में इसकी पुष्टि की। इस कांग्रेस में रूस की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम पारित हुआ। कार्यक्रम के अनुसार, "पूर्ण एकता की तरफ एक संक्रमणकालीन रूप के तौर पर, पार्टी सोवियत के तर्ज़ पर संगठित राज्यों के संघीय एकीकरण की सिफ़ारिश करती है।"
>
> "**इस तरह समाजवादी क्रान्ति के बाद अस्तित्व में आया सोवियत यूनियन वास्तव में अलग-अगल क़ौमी गणराज्यों का संघ था, न कि एकात्मक ढांचा था।** सोवियत यूनियन का 1936 का संविधान इसी बात की पुष्टि करता है कि समाजवादी सोवियत संघ एक संघीय ढांचे वाला मुल्क था। संविधान के पाठ 2 (राज्य की बनावट) में दर्ज है, "सोवियत समाजवादी गणराज्यों की एकता एक संघीय राज्य है जो कि समाजवादी सोवियत गणराज्यों की इच्छा के साथ जुड़ा हुआ है और जिनको बराबर हक़ हैं।"

> "संविधान का यह पूरा पाठ सोवियत गणराज्यों की स्वायत्तता, उनको अलग संविधान रखने और अलग होने की गवाही देता है। **धारा 20 में दर्ज है कि अगर किसी मुद्दे पर केन्द्र और गणराज्यों की राय टकराती है तो गणराज्यों की मानी जायेगी।** इस तरह संघीय ढांचे में भी समाजवादी सोवियत यूनियन ने क़ौमी मुद्दे का हल देखा। इन अर्थों में बहुक़ौमी मुल्क के लिए एकात्मक राज्य की बात करना मज़दूर वर्ग का नज़रिया नहीं हो सकता बल्कि यह शोषक क़ौम या बड़ी बुर्जुआज़ी द्वारा उत्पीड़न के पक्ष में खड़े होना होगा और क़ौमी उत्पीड़न को मान्यता देना होगा।" (ज़ोर हमारा)

यह लम्बा उद्धरण हमने जानबूझकर दिया है ताकि इनके झूठों के पुलिंदे की असलियत उजागर हो सके। इस उद्धरण को पढ़कर क्या किसी भी संजीदा व्यक्ति को यह लग सकता है कि ये किसी मार्क्सवादी-लेनिनवादी के विचार हो सकते हैं? कत्तई नहीं! इतना ही नहीं, जब आप सोवियत संविधान का अध्ययन करते हैं, तो आपको पता चलता है कि यह व्यक्ति झूठ और बेईमानी पर भी आमादा है और सोवियत संविधान जैसे दस्तावेज़ के उद्धरणों को तोड़-मरोड़कर पेश कर रहा है। आगे हम आपको सन्दर्भों समेत दिखलाएंगे कि 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महोदय किस प्रकार झूठ-फ़रेब पर आमादा हैं।

हम पहले भी कई बार यह बात स्पष्ट कर चुके हैं कि संघवाद (federation) के विषय में मार्क्सवादी-लेनिनवादी अवस्थिति एकदम स्पष्ट है और **सैद्धान्तिक तौर पर रूसी क्रान्ति के पहले, बाद या कभी भी इसमें कोई बदलाव नहीं आया था।** मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन व स्तालिन सुसंगत जनवाद पर आधारित जनवादी केन्द्रीयता (democratic centralism) के हिमायती थे तथा अधिकतम सम्भव बड़े व व्यापक एकीकृत यूनियन के समर्थक थे। जैसा कि हमने ऊपर भी बताया था वे संघवाद के विरोधी थे क्योंकि यह वस्तुगत तौर पर सर्वहाराओं की एकता में एक बाधक के तौर पर काम करता है। लेकिन सम्पादक महोदय जानबूझकर सोवियत यूनियन के इतिहास के संशोधनवादी पाठ और व्याख्या के ज़रिये इस अवस्थिति को गड्डु-मड्डु करने का प्रयास कर रहे हैं और इस प्रश्न पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद क्रान्तिकारी शिक्षा को दूषित करने की निहायती घटिया कोशिश कर रहे हैं। उसपर तुर्रा यह कि इस प्रश्न पर मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्तालिन की शिक्षा को यह व्यक्ति मजदूर वर्ग-विरोधी बता रहा है! मतलब एक तो चोरी ऊपर से सीना जोरी! अब आइये विस्तार से इनके झूठ-फ़रेब, बेईमानी, *मिस्कोटिंग* और *मिसरिप्रेज़ेण्टेशन* की पड़ताल करते हैं।

'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व का झूठ नंबर -1

“रूसी क्रान्ति के समय तक बोल्शेविक पार्टी पहले एकात्मक ढांचे की ही समर्थक थी, परन्तु क्रान्ति के बाद की घटनाओं में ज़मीनी हकीकतों को समझते बोल्शेविक पार्टी ने अपनी नीति बदल ली थी!”

सरासर झूठ! बोल्शेविक पार्टी पहले भी एकीकृत यूनियन और केन्द्रीयतावाद की समर्थक थी और अक्तूबर क्रान्ति के बाद भी उसकी अवस्थिति यही थी। जैसा कि हमने ऊपर बताया क्रान्ति के तुरन्त बाद ऐतिहासिक वस्तुगत परिस्थितियों के मद्देनज़र एक संक्रमणकालीन नीति के तौर पर बोल्शेविक पार्टी ने संघीय ढाँचे की नीति अपनायी थी ताकि दमित राष्ट्रों के मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी का भरोसा जीता जा सके और यूनियन गठन की प्रक्रिया सभी राष्ट्रों की सहमति से हो जोकि निकट भविष्य में हुआ भी, जब 1922 में सोवियत यूनियन ने यू.एस.एस.आर नाम अपना लिया।

लेकिन सम्पादक महोदय यह बताने की ज़हमत नहीं उठाते है कि सोवियत यूनियन ने अपने नाम में दिसम्बर 1922 में यूनियन शब्द क्यों जोड़ दिया? अगर वह ‘फ़ेडरेशन’ ही था, जैसा कि सम्पादक महोदय का दावा है तो उसने नाम में ‘फ़ेडरेशन’ क्यों नहीं रखा? सच्चाई यह है कि 1922 तक भी सोवियत यूनियन का चरित्र औपचारिक तौर पर संघीय ढाँचे वाले एक केन्द्रीकृत राज्य का ही था, जिसमें समय के साथ केन्द्रीयता का पहलू और बढ़ता गया, जोकि सर्वहारा-वर्गीय राजनीति के सर्वथा अनुकूल था। लेकिन ‘प्रतिबद्ध-ललकार’ ग्रुप के नेतृत्व को इस बात से क्या लेना-देना है? ऐतिहासिक तथ्य और अनुभव जाएं भाड़ में!

जैसा कि हमने ऊपर भी इंगित किया था कि वास्तव में सोवियत यूनियन में एकीकरण की प्रक्रिया ही कई चरणों में घटित हुई।

सबसे पहले क्रान्ति के बाद सोवियत रूस व अन्य राष्ट्रीय गणराज्यों के बीच सन्धियों के ज़रिये मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों (treaty alliance) की स्थापना हुई। इसके बाद तमाम भूतपूर्व दमित राष्ट्रों में सोवियत समाजवादी गणराज्यों की स्थापना के साथ एक संघीय ढाँचे की व्यवस्था अमल में लायी गयी जोकि 1922 में एक एकीकृत यूनियन के निर्माण में परिणत हुई क्योंकि तब तक इसके लिए सभी क़ौमें रज़ामन्द हो चुकी थीं।

बोल्शेविक पार्टी जानती थी कि राष्ट्रीय दमन के लम्बे इतिहास के चलते क्रान्ति के बाद एक ही झटके में एकीकृत यूनियन का निर्माण सम्भव नहीं है और एक यथार्थवादी परिपक्व पार्टी के अनुरूप व्यवहार करते हुए उसने इतिहास द्वारा प्रदत्त जिन परिस्थितियों में ख़ुद को पाया उसमें अपने यूनियन के सकारात्मक प्रस्ताव को अमली जामा पहनाने की ओर बढ़ने की प्रक्रिया को तात्कालिक तौर पर स्थगित करते हुए पहले संघीय ढाँचे की व्यवस्था में तमाम क़ौमों को शामिल करने की नीति अपनायी क्योंकि उस वक़्त ये तमाम क़ौमें इसी के लिए सहमत थी और इसी के लिए सहमत हो भी सकती थीं। लेकिन इस ऐतिहासिक अनिवार्यता को सैद्धान्तिक परिवर्तन के तौर पर पेश कोई पेटी-बुर्जुआ क़ौमवादी अवसरवादी ही कर सकता है। यह संघवाद के प्रश्न पर कोई

सैद्धान्तिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि दी गयी ऐतिहासिक परिस्थिति में संघीय ढांचे को पूर्ण यूनियन की ओर एक मध्यवर्ती क़दम के तौर पर अपनाना ही था। **अगर कोई यह नहीं समझता तो वह इस बात की व्याख्या नहीं कर सकता है कि 1922 में सोवियत यूनियन की स्थापना के साथ बदला क्या?**

वैसे तो सामान्य-बोध वाले किसी भी व्यक्ति को यह इतनी सरल-सी बात इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती कि 1922 आते-आते सोवियत यूनियन के नाम में ही 'यूनियन' शब्द आ गया था, और 'फेडरेटिव' या 'फ़ेडरेशन' शब्द हट चुका था! और इतना तो 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महोदय भी मानेंगे कि बुर्जुआ राज्यसत्ता के बिल्कुल विपरीत सर्वहारा राज्यसत्ता को बात को घुमा-फिराकर नहीं बल्कि ज्यों का त्यों कहने की आदत होती है क्योंकि वह मेहनतकशों की लूट पर आधारित और बहुसंख्यक आबादी पर अल्पसंख्यकों का राज नहीं होता है। इसलिए उसे अपना राज क़ायम रखने के लिए किसी चाशनीयुक्त मुलम्मे की ज़रुरत नहीं होती है, जैसा कि प्रायः पूंजीवादी सरकारों को ज़रूरत पड़ती है क्योंकि उनके खाने के दांत अलग और दिखाने के अलग होते हैं।

लेकिन संघवाद की बीन बजाने वाले मस्तिष्क को तो अपनी भक्त मण्डली के सामने क़ौमी सवाल पर अपनी इस "महान पश्चगामी छलांग" का वैधीकरण भी प्रस्तुत करना है! तो इससे अच्छा क्या हो कि सोवियत यूनियन को ही 'फ़ेडरेशन' बना दो! अगर सोवियत यूनियन 'फ़ेडरेशन' ही था तो नाम में भी 'फ़ेडरेशन' शब्द ही इस्तेमाल करता ना! नाम यूनियन रखा और नीति बदलकर 'फ़ेडरेशन' वाली हो गयी, यह गड़बड़झाला समझ में नहीं आता है! क्योंकि ऐसा कोई गड़बड़झाला इतिहास में नहीं सम्पादक महोदय के दिमाग़ में है!

1918 में 'मेहनतकश और शोषित जनता के अधिकारों की घोषणा' में कहा गया:

> "1. Russia is hereby proclaimed a Republic of Soviets of Workers', Soldiers' and Peasants' Deputies. All power, centrally and locally, is vested in these Soviets.
>
> "2. The Russian Soviet Republic is established on the principle of a free union of free nations, **as a federation of Soviet national republics.**"

1919 में बोल्शेविक पार्टी की आठवीं कांग्रेस में राष्ट्रीय प्रश्न के सम्बन्ध में निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाया गया, जिसमें स्पष्ट तौर पर यह बताया गया है कि सोवियत यूनियन के अन्तर्गत तमाम राष्ट्रों की मुक़म्मल एकता के लिए **एक संक्रमणकालीन अवधि के लिए संघीय ढाँचे की नीति को अपनाया जा रहा है ताकि दमित राष्ट्रों की सर्वहारा और अर्द्ध-सर्वहारा आबादी के साथ मिलकर भूस्वामी और बुर्जुआ वर्ग को उखाड़ फेंकने के लिए संयुक्त क्रान्तिकारी संघर्ष संगठित किया जा सके** और दमित राष्ट्रों की सर्वहारा आबादी का विश्वास जीता जा सके जो कि सभी राष्ट्रों की बराबरी सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

> "राष्ट्रीय प्रश्न पर सोवियत यूनियन की कम्युनिस्ट पार्टी निम्न प्रस्थापनाओं से निर्देशित होगी:

"1. हमारी नीति की धुरी है विभिन्न राष्ट्रीयताओं के सर्वहाराओं और अर्द्धसर्वहाराओं को लाना ताकि भूस्वामियों और बुर्जुआ वर्ग को एक संयुक्त क्रान्तिकारी संघर्ष के ज़रिये उखाड़ कर फेंका जा सके।

"2. दमित राष्ट्रों के मेहनतकश जनसमुदायों द्वारा उन राज्यों के सर्वहारा वर्गों के प्रति महसूस किये जाने वाले अविश्वास पर विजय पाने के लिए जो कि इन राष्ट्रों को दबाते थे, यह ज़रूरी है कि किसी भी राष्ट्रीय समूह को मिलने वाले विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया जाये, सभी राष्ट्रीयताओं के लिए अधिकारों की पूर्ण समानता स्थापित की जाये, और उपनिवेशों व निर्भर राष्ट्रों के लिए अलग होने के अधिकार को मान्यता दी जाये।

"3. **इसी लक्ष्य को निग़ाह में रखते हुए पार्टी पूर्ण एकता की ओर एक संक्रमणात्मक क़दम के तौर पर, सोवियत रूप के अनुसार राज्यों के संघ का प्रस्ताव रखती है।**" (राष्ट्रीय, प्रश्न सम्बन्धी कार्यक्रम, **बोल्शेविक पार्टी की आठवीं कांग्रेस**, 1919)

लेनिन इसी बात को जून 1920 में कोमिण्टर्न की दूसरी कांग्रेस में प्रस्तुत 'राष्ट्रीय और औपनिवेशिक प्रश्नों पर मसौदा थीसिस' में भी रेखांकित करते हैं-

"परिणामत: इस वक़्त कोई भी अपने को भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की श्रमिक जनता के बीच एकता की कोरी मान्यता या घोषणा तक ही सीमित नहीं रख सकता। एक ऐसी नीति का अनुसरण करना ज़रूरी है, जिससे सोवियत रूस के साथ राष्ट्रों और उपनिवेशों के सभी स्वतन्त्रता आन्दोलनों का घनिष्ठतम सहबन्ध सुलभ हो सके। प्रत्येक देश के सर्वहाराओं में कम्युनिस्ट आन्दोलन, पिछड़े हुए राष्ट्रों में अथवा पिछड़े हुए देशों में मज़दूरों और किसानों के बुर्जुआ जनवादी स्वतन्त्रता-आन्दोलन के विकास-स्तरों के अनुसार ही इस सहबन्ध के रूप निर्धारित किये जायेंगे।

"विभिन्न राष्ट्रों की श्रमिक जनता में पूर्ण एकता लाने के लिए फ़डरेशन एक संक्रमणकालीन व्यवस्था है। फ़ेडरेशन का औचित्य व्यावहारिक रूप में एक तो रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतन्त्र और अन्य सोवियत जनतन्त्रों के आपसी सम्बन्धों से प्रदर्शित हो चुका है (अतीत में हंगरी, फ़िनलैण्ड और लात्विया के साथ और आजकल अज़रबैजान और यूक्रेन के साथ), और दूसरे, रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतन्त्र के अन्दर उन राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों में भी, जिनके पास पहले न तो राज्य की व्यवस्था थी और न स्वायत्त शासन ही (उदारहरणार्थ, बश्कीर और तातार स्वायत्त जनतन्त्र, जिनकी स्थापना रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतन्त्र के अन्दर 1919 और 1920 में हुई)।

"इस सम्बन्ध में कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल का कार्य यह है कि वह इन नये फ़ेडरेशनों को, जो सोवियत पद्धति और सोवियत आन्दोलन के आधार पर पनप रहे हैं, विकसित करे, उनका अध्ययन करे और अनुभवों द्वारा उन्हें परखे। **यह मानने के साथ-साथ कि फ़ेडरेशन पूर्ण एकता का एक संक्रमणकालीन रूप है, यह आवश्यक है कि अधिक से अधिक घनिष्ठ संघीय एकता के लिए प्रयत्न किया जाये** और इस बात को ध्यान में रखा जाये कि (1) सोवियत जनतन्त्र जो दुनिया भर की साम्राज्यवादी शक्तियों से–ये शक्तियाँ सैनिक दृष्टि से अत्यधिक सशक्त हैं–घिरे हुए हैं, बिना घनिष्ठतम सहबन्ध के जीवित नहीं रह सकते; (2) सोवियत जनतन्त्रों के बीच घनिष्ठ आर्थिक सहबन्ध की आवश्यकता है, क्योंकि बिना इसके साम्राज्यवाद द्वारा विनष्ट की गयी उत्पादक शक्तियों को पुन: जीवित करना और श्रमिक जनता के कल्याण को सुनिश्चित करना असम्भव है; (3) एक सामान्य योजना के अनुसार तथा समस्त राष्ट्रों के सर्वहारा द्वारा नियन्त्रित एक विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था का निर्माण करने की प्रवृत्ति प्रकट हो गयी है। पूँजीवाद के अधीन यह प्रवृत्ति पहले से ही स्पष्ट हो चुकी है। अब निश्चय ही समाजवाद के अधीन इसका विकास करना और उसे पूर्णता तक ले जाना चाहिए।"

1918 का रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी गणराज्य का संविधान देखें इस विषय में क्या कहता है:

"11. The soviets of those regions which differentiate themselves by a special form of existence and national character may unite in autonomous regional unions, ruled by the local congress of the soviets and their executive organs.

"These autonomous regional unions participate in the Russian Socialist Federated Soviet Republic upon a Federal basis."

अभी सोवियत यूनियन अस्तित्व में नहीं आया था लेकिन रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी गणराज्य का यह संघीय ढाँचा भी कितना "संघीय" था यह इस बात से ही स्पष्ट हो जाता है कि तमाम महत्वपूर्ण मसलों पर फ़ैसला लेने की ताक़त केन्द्रीय सत्ता के निकायों के पास थी। इस संघीयता का बुर्जुआ संघीयता से कोई रिश्ता नहीं था। देखें:

"49. The *All-Russian Congress and the All-Russian Central Executive Committee deal with the questions of state, such as:*

(a) *Ratification and amendment of the Constitution of the Russian Socialist Federated Soviet Republic*;

(b) General direction of the entire interior and foreign policy of the Russian Socialist Federated Soviet Republic;

(c) *Establishing and changing boundaries, also ceding territory belonging to the Russian Socialist Federated Soviet Republic*;

(d) *Establishing boundaries for regional soviet unions belonging to the Russian Socialist Federated Soviet Republic*, also settling disputes among them;

(e) Admission of new members to the Russian Socialist Federated Soviet Republic, and recognition of the secession of any parts of it;

(f) *The general administrative division of the territory of the Russian Socialist Federated Soviet Republic* and the approval of regional unions;

(g) *Establishing and changing weights, measures, and money denominations in the Russian Socialist Federated Soviet Republic;*

(h) Foreign relations, declaration of war, and ratification of peace treaties;

(i) *Making loans, signing commercial treaties and financial agreements;*

(j) *Working out a basis and a general plan for the national economy and for its various branches in the Russian Socialist Federated Soviet Republic;*

(k) *Approval of the budget of the Russian Socialist Federated Soviet Republic;*

(l) *Levying taxes and establishing the duties of citizens to the state;*

(m) *Establishing the bases for the organization of armed forces;*

(n) *State legislation, judicial organization and procedure, civil and criminal legislation, etc.*;

(o) *Appointment and dismissal of the individual People's Commissars or the entire council, also approval of the president of the Council of People's Commissars;*

(p) *Granting and cancelling Russian citizenship and fixing rights of foreigners;*

(q) The right to declare individual and general amnesty.

"50. ***Besides the above-mentioned questions, the All-Russian Congress and the All-Russian Central Executive Committee have charge of all other affairs which, according to their decision, require their attention.***

"51. ***The following questions are solely under the jurisdiction of the All-Russian Congress:***

(a) ***Ratification and amendment of the fundamental principles of the Soviet Constitution;***

(b) Ratification of peace treaties."

आप देख सकते हैं कि 1918 के संविधान में, जो कि कहने के लिए उस दौर का संविधान है जिस वक़्त सोवियत रूस औपचारिक तौर पर एक संघ ही था और संघीय व्यवस्था की नीति का पालन कर रहा था, सभी महत्वपूर्ण नीतिगत मामलों में फैसला लेने की ताक़त अखिल-रूसी कांग्रेस और अखिल-रूसी कार्यकारिणी समिति के पास थी।

लेकिन इन तमाम ऐतिहासिक तथ्यों के बावजूद 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप का नेतृत्व सोवियत यूनियन के इतिहास के भयंकर विकृतिकरण पर आमादा है। 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक यह बताना कत्तई ज़रूरी नहीं समझते हैं कि सोवियत यूनियन के नाम में 1922 में तब्दीली क्यों हुई? अगर सोवियत सत्ता और बोल्शेविक पार्टी की 1918 से 1922 तक अपनायी गयी अपवादस्वरूप तात्कालिक नीति, जिसके तहत एक संक्रमणकालीन अवधि में औपचारिक तौर पर एक संघात्मक ढाँचे का रूप अस्तित्व में आया था (हालांकि हमने 1918 के संविधान के हवाले से ऊपर देखा और आगे सन्दर्भ सहित फिर दिखलायेंगे कि *यह संघात्मक स्वरूप वास्तव में औपचारिक ही था और केन्द्रीयतावाद और एकीकृत यूनियन का पहलू ही सारतत्व में तब भी हावी था)*, में कोई बदलाव आया ही नहीं था तो सोवियत यूनियन का नाम रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी गणराज्य (Russian Soviet Federative Socialist Republic; RSFSR) व अन्य संघीय राष्ट्रीय गणराज्यों से बदलकर 1922 में सोवियत समाजवादी गणराज्यों का यूनियन (Union of Soviet Socialist Republics; USSR) क्यों कर दिया गया था? **'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महोदय इस मुद्दे पर साज़िशाना चुप्पी अख्तियार करते हैं।**

साथ ही, आप देख सकते हैं की 'प्रतिबद्ध' के लेख से ऊपर उद्धृत हिस्से में हमारे सम्पादक महोदय 1918 से सीधे 1936 में छलांग लगाते हैं। यह छलांग कोई ग़लती से नासमझी में लगाई गयी छलांग नहीं है बल्कि बहुत ही कपटपूर्ण तरीके से और सयानेपन से लगायी गयी छलांग है! 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेता महोदय बहुत ही "मासूमियत" भरे अंदाज़ में लिखते हुए इस "भोले-भाले" निष्कर्ष पर पहुँचते हैं:

> "इस तरह समाजवादी क्रान्ति के बाद अस्तित्व में आया सोवियत यूनियन वास्तव में अलग-अगल क़ौमी गणराज्यों का संघ था, न कि एकात्मक ढांचा था। सोवियत यूनियन का 1936 का संविधान इसी बात की पुष्टि करता है कि समाजवादी सोवियत एक संघीय ढांचे वाला मुल्क था।"

सोवियत इतिहास के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कालखण्ड को गोल करने की धूर्तता के पीछे असलियत में अपनी बुर्जुआ संघवादी अवस्थिति को सही ठहराना है। आइये इनके अगले झूठ का पर्दाफ़ाश करते हैं।

‘ललकार-प्रतिबद्ध’ ग्रुप के नेतृत्व का झूठ नंबर -2

“1936 के सोवियत संविधान की धारा 20 में दर्ज है कि अगर किसी मुद्दे पर केन्द्र और गणराज्यों की राय टकराती है तो गणराज्यों की मानी जायेगी!”

सरासर झूठ! यह है ‘प्रतिबद्ध’ के सम्पादक सुखविन्दर का झूठ और लबारपन से भरा हुआ दावा और उन्होंने इस कुत्सित हरक़त के लिए सोवियत संविधान को आधार बनाया है। अब मैं आपको 1936 के संविधान से शब्दशः वह हिस्सा उद्धृत करके दिखलाती हूँ ताकि आप स्वयं देख सकें इन महोदय ने किस प्रकार झूठ और ग़लतबयानी की है। 1936 के संविधान की धारा 20 देखें क्या कहती है:

> ARTICLE 20. **In the event of a discrepancy between a law of a Union Republic and an all-Union law, the all-Union law prevails.**

यानी 1936 के सोवियत संविधान की धारा 20 सम्पादक महोदय के दावे के एकदम इसके विपरीत बात करती है और 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक इस मसले पर सीधे-सीधे सफ़ेद झूठ बोल रहे हैं! क्या यह कोई मामूली त्रुटि है? नहीं! यह तो सोवियत संविधान जैसे अहम दस्तावेज़ के एक उद्धरण में ऐसा संशोधन और हेर-फेर है, जो कि इस उद्धरण का अर्थ ही बदल देता है! यह फ़रेब और बेईमानी सुखविन्दर क्यों कर रहे हैं? क्योंकि अब वह बुनियादी क्रान्तिकारी ईमानदारी खो चुके हैं और बहस में लाजवाब होने के बाद अपने आहत अहं को बचाने के लिए अपने मार्क्सवाद-विरोधी सिद्धान्तों को ज़बरन सही साबित करने का प्रयास कर रहे हैं।

जैसा कि आप देख सकते हैं, सुखविन्दर के झूठ के ठीक विपरीत, 1936 के सोवियत संविधान की धारा 20 कहती है कि यदि यूनियन और गणराज्यों के किसी क़ानून में टकराव होगा तो उस सूरत में यूनियन का क़ानून मान्य होगा। ऊपर देखें सम्पादक महोदय ने क्या कहा है--कि यदि ऐसा स्थिति पैदा होती है तो गणराज्यों की मानी जायेगी! यह इरादतन झूठ बोलना नहीं तो और क्या है? पाठक स्वयं देख लें कि किस प्रकार एक विजातीय लाइन को सही साबित करने के लिए यह जनाब ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के साथ छेड़छाड़ कर रहे हैं, इन दस्तावेज़ों में जो बात दर्ज है उसके एकदम उलटी बात प्रस्तुत कर रहे हैं और अब अपने कुतर्कों को साबित करने के लिए इरादतन झूठ बोलने और बईमानी करने पर उतर आये हैं।

1936 का सोवियत संविधान सोवियत समाजवादी गणराज्यों के यूनियन को महज़ औपचारिक तौर पर संघीय ढाँचे वाले राज्य के तौर पर व्याख्यायित करता है, जिसे आप अतीत से औपचारिक तौर पर चली आ रही एक निरन्तरता मात्र कह सकते हैं। इस यूनियन में निम्न गणराज्य शामिल थे:

रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी गणराज्य

उक्रेनी सोवियत समाजवादी गणराज्य

बायलोरूसी सोवियत समाजवादी गणराज्य

अज़रबैजानी सोवियत समाजवादी गणराज्य

जॉर्जियाई सोवियत समाजवादी गणराज्य

अर्मेनियाई सोवियत समाजवादी गणराज्य

तुर्कमेन सोवियत समाजवादी गणराज्य

उज़बेक सोवियत समाजवादी गणराज्य

ताजिक सोवियत सामाजवादी गणराज्य

कज़ाख़ सोवियत समाजवादी गणराज्य

किरगिज़ सोवियत समाजवादी गणराज्य

करेलो-फ़िनिश सोवियत समाजवादी गणराज्य

मोल्दावियाई सोवियत समाजवादी गणराज्य

लिथुवानियाई सोवियत समाजवादी गणराज्य

लात्वियाई सोवियत समाजवादी गणराज्य

एस्तोनियाई सोवियत समाजवादी गणराज्य

सोवियत संविधान इन सभी गणराज्यों को अलग होने का अधिकार भी देता था, इसलिए नहीं कि सोवियत यूनियन एक 'फ़ेडरेशन' था, क्योंकि इसके लिए 'फ़ेडरेशन' होने की आवश्यकता नहीं है! बल्कि इसलिए क्योंकि यह राष्ट्रों की स्वेच्छा पर आधारित गणराज्यों का यूनियन था जो राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार को महज़ काग़ज़ी तौर पर नहीं मानता था बल्कि वास्तविकता में सच्चे अर्थों में इसपर अमल भी करता था। **लेकिन चूंकि सोवियत यूनियन एक यूनियन था इसलिए संविधान की धारा 14 बताती है कि:**

> "धारा 14 -सोवियत समाजवादी गणराज्य यूनियन जिसका प्रतिनिधित्व सत्ता का उच्चतम अंग और राज्य प्रशासन के अंगों द्वारा किया जाता है, का अधिकारक्षेत्र निम्नलिखित हैं:
>
> "(a) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में यूनियन का प्रतिनिधित्व और दूसरे देशों के साथ सन्धियों का अनुमोदन और समाप्ति;

“(b) युद्ध और शांति का मसला;

“(c) सोवियत यूनियन में नये गणराज्यों का प्रवेशाधिकार;

“(d) सोवियत यूनियन के संविधान के अनुसरण का पर्यवेक्षण करना और यह सुनिश्चित करना कि यूनियन गणराज्यों का संविधान सोवियत यूनियन के संविधान के अनुरूप हो;

“(e) यूनियन गणराज्यों के बीच सीमाओं के परिवर्तन का अनुमोदन;

“(f) नए क्षेत्रों और प्रदेशों का निर्माण और यूनियन गणराज्यों के अंदर ही नए स्वायत्त गणराज्यों की मान्यता देने का अधिकार;

“(g) सोवियत यूनियन के रक्षा विषय व सभी सशस्त्र बलों का निर्देशन;

“(h) राज्य एकाधिकार पर आधारित विदेश व्यापार;

“(i) राज्य की सुरक्षा का मसला;

“(j) सोवियत यूनियन की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की योजना का निर्धारण;

“(k) सोवियत यूनियन का संयुक्त बजट व करों और शुल्कों, जिसके अनुसार यूनियन, गणराज्यों और स्थानीय बजट निर्धारित होता है, का अनुमोदन;

“(l) अखिल-यूनियन की महत्ता वाले सभी बैंकों, उद्योगों, कृषि संस्थानों और उद्यमों का प्रबन्धन;

“(m) यातायात व दूरसंचार माध्यमों का प्रबन्धन;

“(n) मौद्रिक व ऋण व्यवस्था का निर्देशन;

“(o) राज्य बीमा का व्यवस्थापन;

“(p) ऋण प्रदान व ग्रहण करना;

“(q) भूमि पट्टेदारी व खनिज पदार्थों, वनों और जल संसाधनों के उपयोग के मूल सिद्धान्त का निर्धारण;

“(r) शिक्षा व सार्वजानिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में बुनियादी नियमों का निर्धारण;

"(s) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लेखा की एकसमान व्यवस्था का प्रबन्धन;

"(t) श्रम कानूनों के नियमों का निर्धारण;

"(u) न्यायिक प्रणाली व न्यायिक प्रक्रिया को संचालन करने वाला क़ानून निर्माण;

फ़ौजदारी व दीवानी संहिताएँ ;

"(v) यूनियन की नागरिकता सम्बन्धी क़ानून;

विदेशी नागरिक के अधिकार सम्बन्धी क़ानून;

"(w) क्षमा प्रदान सम्बन्धी अखिल-यूनियन क़ानून;"

संविधान की धारा 15 गणराज्यों को उपरोक्त सभी मामलों को छोड़कर बचे हुए मसलों में अपना नियन्त्रण लागू करने का अधिकार देती थी। **लेकिन हम देख सकते हैं कि सभी महत्वपूर्ण मसलों पर फ़ैसले केन्द्रीय यूनियन द्वारा ही लिए जाते थे और उनके कार्यान्वयन का काम स्थानीय निकायों व सोवियतों को सुपुर्द किया गया था जो की लेनिनवादी क्षेत्रीय स्वायत्तता के उसूल के सर्वथा अनुकूल था।**

> "ARTICLE 15. The sovereignty of the Union Republics is limited only within the ***provisions set forth in Article 14*** of the Constitution of the U.S.S.R. Outside of these provisions, each Union Republic exercises state authority independently. The U.S.S.R. protects the sovereign rights of the Union Republics."

संविधान की धारा 16 गणराज्यों को संविधान रखने का अधिकार तो देती थी, लेकिन यह संविधान सोवियत यूनियन के संविधान के अनुरूप ही हो सकता था और उनका सोवियत केन्द्रीय संविधान से कोई अन्तरविरोध नहीं हो सकता था। यानी, ये शुद्धत: स्थानीय मसलों पर ही कुछ प्रावधान रख सकते थे और अन्य सभी प्रावधान सोवियत केन्द्रीय संविधान के अनुरूप ही हो सकते थे।

> "ARTICLE 16. Each Union Republic has its own Constitution, which takes account of the specific features of the Republic and ***is drawn up in full conformity with the Constitution of the U.S.S.R."***

धारा 19 के अनुसार सोवियत यूनियन के सभी क़ानून गणराज्यों में समान रूप से मान्य होंगे और कोई गणराज्य इन क़ानूनों को रद्द या निलंबित नहीं कर सकता था।

> "ARTICLE 19.***The laws of the U.S.S.R. have the same force within the territory of every Union Republic."***

जैसा कि हमने ऊपर भी बताया था यदि सोवियत यूनियन के क़ानून और गणराज्यों के क़ानून में कोई मतभेद या अन्तर्विरोध होगा, तो उस सूरत में यूनियन का क़ानून ही प्राथमिक और प्रभावी होगा। **यह धारा सोवियत संघ के विषय में सुखविन्दर के संघवादी सपने के बुलबुले को एकदम से फोड़ देती है:**

> **"ARTICLE 20.In the event of a discrepancy between a law of a Union Republic and an all-Union law, the all-Union law prevails."**

पूरे सोवियत संघ की एक साझा नागरिकता होगी। इसके बारे में 1936 का संविधान कहता है:

> "ARTICLE 21. A single Union citizenship is established for all citizens of the U.S.S.R. Every citizen of a Union Republic is a citizen of the U.S.S.R."

धारा 60 स्पष्ट तौर पर बताती है कि गणराज्यों की सर्वोच्च सोवियत **सोवियत यूनियन के संविधान की धारा 16 के अनुरूप ही** *अपने संविधान* को अंगीकार कर सकती है और उसमें संशोधन कर सकती है।

> "ARTICLE 60. The Supreme Soviet of a Union Republic:
>
> a) Adopts the Constitution of the Republic and amends it ***in conformity with Article 16 of the Constitution of the U.S.S.R.***"

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेतृत्व ने सोवियत यूनियन के संविधान के विषय में ज़बरदस्त झूठ बोले हैं और उसे बेहद बेईमानी के साथ उद्धृत किया है। ऐसा करते हुए उन्होंने रही-सही क्रान्तिकारी नैतिकता को भी खो दिया है। और यह सब क्यों किया गया है? सिर्फ़ इसलिए कि अपनी मार्क्सवाद विरोधी संघवादी अवस्थिति को सही साबित कर सकें। लेकिन ऐसा करते हुए व्यक्ति उपहास का पात्र ही बनता है और राजनीतिक पतन की ओर कई क़दम और आगे बढ़ जाता है।

उपरोक्त उद्धरणों के ज़रिये पाठक समझ सकते हैं कि (1) सोवियत यूनियन एक फ़ेडरेशन नहीं बल्कि यूनियन था जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है और वास्तव में नाम में परिवर्तन किया ही इसी वजह से गया था कि अब सोवियत राज्य संघ के रूप में नहीं बल्कि एक यूनियन के रूप में संघटित था; (2) इस यूनियन का 'संघीय ढांचा' पूर्णत: औपचारिक व नॉमिनल रह गया था और वास्तव में संघीयता का कुछ भी नहीं बचा था, जैसा कि हमने ऊपर देखा; (3) 1922 से पहले भी सोवियत रूस की संघीयता मूलत: और मुख्यत: औपचारिक ही थी और उसमें केन्द्रीय यूनियन का चरित्र हावी हो चुका था; (4) 1922 में सोवियत यूनियन की स्थापना के साथ संघीय ढांचा पूर्णत: औपचारिक व नॉमिनल बनने लगा और पहले 1924 के संविधान में यह बात स्पष्ट तौर पर सामने आती है और फिर 1936 तक यह प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी थी; और (5) संघ या वस्तुत: संघीय ढांचे के न होने के बावजूद सोवियत यूनियन इस केन्द्रीय राज्य को संघटित करने वाले सभी राष्ट्रीय समाजवादी गणराज्यों को सही मायने

में अलग होने समेत राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का अधिकार देता था; **उल्टे संघीय ढांचा और संघवाद आम तौर पर इस अधिकार को औपचारिक बनाने का ही काम करते हैं और उसके लिए *प्लेसीबो* का काम करते हैं। जनवादी केन्द्रीयता पर आधारित एक समाजवादी राज्य ही सही मायने में यह अधिकार दे सकता है।**

अब थोड़ा और विस्तार से देखते हैं कि सोवियत यूनियन कितना "संघीय" था।

आख़िर कितना “संघीय” था सोवियत यूनियन?

‘ललकार-प्रतिबद्ध’ ग्रुप के नेतृत्व के अनुसार संघीय ढाँचे का यह अर्थ होता है:

> “संघीय ढांचे का अर्थ है कि अलग-अलग क़ौमें आपसी सहमति के साथ, बराबरी के आधार पर एक ढांचे में इकट्ठी होती हैं। केन्द्र में सभी क़ौमों का प्रतिनिधित्व होता है और कुछ चुनंदा मुद्दों पर फ़ैसला लेने का हक़ केन्द्र के पास होता है और बाक़ी ज़्यादातर मामलों में फ़ैसला लेने का हक़ क़ौमों के पास होता है। *जिन फ़ैसलों का अधिकार केन्द्र के पास होता है उस पर भी अन्तिम फ़ैसला क़ौमों के पास होता है, यानी केन्द्र के फ़ैसलों का मानना या न मानना उनके पास ही होता है।”*

पाठक 1936 के सोवियत संविधान पर उपरोक्त चर्चा की रोशनी में स्वयं देख लें कि सोवियत यूनियन कितना “संघीय” था! प्रतिबद्ध के सम्पादक का मानना है कि संघीय ढांचे की ख़ासियत यह है कि केन्द्र के फ़ैसले को मानना या न मानना क़ौमों या गणराज्यों के ऊपर होता है। लेकिन हमने सोवियत संविधान के हवाले से देखा कि सोवियत यूनियन में तो ठीक इसका विपरीत हो रहा था।

‘प्रतिबद्ध-ललकार’ ग्रुप के नेतृत्व का यह वाहियात दावा महज़ अपढ़ता या अज्ञानता के कारण तो सम्भव नहीं है, स्पष्ट है कि नेता महोदय अब इरादतन बौद्धिक बईमानी पर उतर आये हैं। क्यों? ताकि अपनी ख़स्ताहाल बुर्जुआ क़ौमवादी-संघवादी लाइन का पक्ष-पोषण कर सकें।

नीचे हम स्तालिन के 1918 से 1923 तक के लेखन के ज़रिये यह दिखाएँगे कि सोवियत यूनियन वास्तव में एक एकीकृत यूनियन ही था और जिस दौर में औपचारिक तौर पर संघीय ढाँचे की नीति पर अमल किया जा रहा था, उस दौर में भी केन्द्रीयतावादी कारक व तत्व ही प्रधान थे।

चूँकि ‘प्रतिबद्ध’ के सम्पादक ने स्तालिन को एक आम बुर्जुआ संघवादी में तब्दील करने की नाक़ामयाब कोशिश की है, इसलिए इस मसले पर स्वयं स्तालिन के लेखन को ही देख लेना पर्याप्त है।

अप्रैल 1918 में 'रूसी संघात्मक गणराज्य के संगठन' नामक वक्तव्य में संघीय क्षेत्रों के अधिकारों के सीमित अधिकारों के विषय में स्तालिन कहते हैं कि तमाम सैन्य व नौसेना से सम्बन्धित मामले,विदेशी मसले, रेल यातायात, पोस्ट और टेलीग्राफ़, मुद्रा, वाणिज्यिक समझौते व आम आर्थिक, वित्तीय व बैंकिंग से जुड़े नीतिगत फ़ैसले केन्द्रीय तौर पर लिये जायेंगे। इन्हें छोड़कर बाक़ी सभी मसले व उपरोक्त मसलों पर ***केन्द्रीय फ़ैसलों के कार्यान्वयन का काम*** क्षेत्रीय अधिकार-क्षेत्र में आयेंगे:

"RIGHTS OF FEDERATING REGIONS. RIGHTS OF NATIONAL MINORITIES

"**The rights of these federating regions will be definitely delimited in the process of constituting the Soviet Federation as a whole,** but the general outline of these rights can be indicated already. **Military and naval affairs, foreign affairs, railways, post and telegraph, currency, trade agreements and general economic, financial and banking policy will probably all come within the province of the central Council of People's Commissars.** All other affairs, and *primarily the methods of implementation of general decrees, education, judicature, administration, etc.*, will come within the province of the regional Councils of People's Commissars. No compulsory "state" language—either in the judicature or in the educational system! Each region will select the language or languages which correspond to the composition of its population, and there will be *complete equality of languages both of the minorities and the majorities in all social and political institutions.*"

आगे स्तालिन इसी वक्तव्य में संघवाद के प्रति आसक्ति की धज्जियाँ उड़ाते हुए तमाम बुर्जुआ संघीय गणतंत्रों की असलियत भी उजागर करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह वक्तव्य 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक को ध्यान में रखते हुए स्तालिन ने दिया था क्योंकि संघवाद के प्रति ऐसी दीवानगी "मार्क्सवादियों" में हमने तो देखी नहीं कभी! यह भी बात यहां ग़ौर करने योग्य है कि स्तालिन का मानना है कि हर क़ौम के क्षेत्र में भी उस क़ौम की भाषा को कोई वरीयता हासिल नहीं होगी और उस क़ौम के क्षेत्र में रहने वाली सभी अल्पसंख्यक आबादियों की भाषाओं को बराबर मान्यता हासिल होगी। ग़ौरतलब है कि सुखविन्दर का यह मानना है कि पूरे भारत में कोई आधिकारिक भाषा नहीं होगी लेकिन हर कौमी गणराज्य के क्षेत्र में उस कौम की भाषा को आधिकारिक राज्य भाषा का ओहदा दिया जायेगा, जैसे कि भारत की कोई आधिकारिक राज्य भाषा नहीं होगी लेकिन पंजाब में पंजाबी को आधिकारिक भाषा का दर्जा मिलना चाहिए; उपरोक्त उद्धरण में आप देख सकते हैं कि स्तालिन इसके ठीक विपरीत मानते हैं। न तो केन्द्रीय स्तर पर कोई आधिकारिक भाषा होगी और न ही तमाम क़ौमों के गणराज्यों में कोई आधिकारिक भाषा होगी। दोनों ही स्तरों पर किसी भाषा को आधिकारिक राज्य भाषा नहीं माना जाएगा और हर भाषा का बराबरी का दर्जा होगा। **जाहिर है, सुखविन्दर की अवस्थिति एक पंजाबी क़ौमवादी की अवस्थिति है न कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी अवस्थिति।**

बहरहाल, अमेरिका, कनाडा और स्विट्ज़रलैंड के उदाहरणों से स्तालिन बताते हैं कि ये तथाकथित संघवाद के आदर्श गणतन्त्र भी वास्तव में एकात्मक ढाँचे को ही प्रतिबिंबित करते हैं। पाठकों को याद दिला दें कि 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेता महोदय स्विट्ज़रलैंड को "क़ौमी शांति का स्वर्ग" मानते हैं! देखें स्तालिन क्या कहते हैं:

> "TRANSITIONAL FUNCTION OF FEDERALISM
>
> These, in my opinion, Comrade Stalin continued, are the general contours of the Russian Federation whose process of constitution we are now witnessing. **Many are inclined to regard the federal system as the most stable, and even as ideal, and America, Canada and Switzerland are often cited as examples. But this infatuation with federalism is not warranted by history.** In the first place, **America and Switzerland are no longer federations:** they were federations in the 1860's, but **they have in fact become unitary states since the end of the last century, when all authority was transferred from the states or cantons to the central federal government. History has shown that federalism in America and Switzerland was only a transitional step from the independence of the states or cantons to their complete union.** Federalism proved quite expedient as a transitional step from independence to imperialist unitarism, but it became out of date and was discarded as soon as the conditions matured for the union of the states or cantons into a single integral state." (स्तालिन, **'रूसी संघात्मक गणराज्य के संगठन'** पर वक्तव्य, अप्रैल 1918)

एकीकृत यूनियन गठन की प्रक्रिया में संघीय ढाँचे की संक्रमणकालीन नीति को रेखांकित करते हुए स्तालिन बताते है कि

> "SHAPING THE POLITICAL STRUCTURE OF THE RUSSIAN FEDERATION. FEDERALISM IN RUSSIA—A TRANSITIONAL STEP TO SOCIALIST UNITARISM
>
> "In Russia, constitutional development is proceeding in a reverse way. **Compulsory tsarist unitarism is being replaced by voluntary federalism,** ***in order that, in the course of time, federalism may be replaced by an equally voluntary and fraternal union of the labouring masses of all the nations and races of Russia.*** As in America and Switzerland, Comrade Stalin concluded, ***federalism in Russia is destined to serve as a means of transition—transition to the socialist unitarism of the future.***" (Stalin, ORGANISATION OF A RUSSIAN FEDERAL REPUBLIC, April 3-4, 1918)

इसी दौर में एक अन्य स्थान पर संघीय ढाँचे की तात्कालिक संक्रमणकालीन नीति के बारे में स्तालिन लिखते हैं:

> "**The main objective of the Constitution of the Russian Socialist Federative Soviet Republic adapted to the** ***present transitional period*** **is to establish a dictatorship of the urban and rural proletariat and the poor peasantry, in the form of a strong all-Russian Soviet power, for the purpose of completely suppressing the bourgeoisie,** abolishing the exploitation of man by man, and introducing socialism, under which there

will be neither division into classes nor a state power." (GENERAL PROVISIONS OF THE CONSTITUTION OF THE RUSSIAN SOCIALIST FEDERATIVE SOVIET, Draft Approved by the Commission Appointed by the All-Russian C.E.C. for Drafting the Constitution of the Soviet Republic, April 25, 1918)

तातार-बश्कीर सोवियत गणराज्य की सोवियतों के गठन की कांग्रेस में स्तालिन अपने भाषण में सोवियत संघीय ढाँचे के प्रावधानों के विषय में बात रखते हुए कहते हैं कि जहां एक तरफ क्रान्ति के पश्चात फिनलैंड और यूक्रेन में सर्वहारा तत्वों ने भी स्वतन्त्रता के प्रति तत्परता दिखाई, वहीँ तातार, बश्कीर, जॉर्जिया,अर्मेनिया आदि क्षेत्रों में बुर्जुआ तत्वों की सक्रियता ही अधिक दिखलाई पड़ी थी जो कि बुर्जुआ अर्थों में स्वायत्तता चाहते थे जोकि सर्वहारा सत्ता कत्तई नहीं दे सकती थी क्योंकि इसका अर्थ इन इलाकों के मज़दूर वर्ग को वहाँ के पूँजीपति वर्ग के रहमोकरम पर रखने के समान होता। **स्तालिन यह भी स्पष्ट करते हैं कि सोवियत रूस में संघीय ढाँचे का मतलब वास्तव में क्षेत्रीय स्वायत्तता ही है जोकि क़ौमी पहचान पर आधारित राजनीतिक, सांस्कृतिक या शैक्षणिक स्वायत्तता नहीं बल्कि सोवियतों की व्यवस्था पर आधारित क्षेत्रीय स्वायत्तता है जिसका आधार वर्गीय पहचान है, नाकि राष्ट्रीय पहचान।** देखें स्तालिन क्या कहते है:

"The Third Congress of Soviets laid down general provisions of the Constitution of the Soviet Republic, and called upon the labouring elements of the peoples of Russia to say in what concrete political forms they would like to constitute themselves in their regions, and in what relations they would like to stand to the centre. Of all the regions, Finland and the Ukraine, I think, are the only ones that have declared themselves definitely. They have declared in favour of *independence.* And when the Council of People's Commissars became convinced that *not only the bourgeoisie, but also the proletarian elements of these countries were striving for independence,* these countries received what they demanded without any hindrance.

"As to the other regions, their labouring elements have proved to be rather inert in the matter of the national movement. But the greater their inertia the greater was the activity displayed by the bourgeoisie. **Nearly everywhere, in all the regions, bourgeois autonomous groups were formed which set up "National Councils," split their regions into separate national curiae, with national regiments, national budgets, etc., and thus turned their countries into arenas of national conflict and chauvinism. These autonomous groups** (I am referring to the Tatar, Bashkir, Kirghiz, Georgian, Armenian and other "National Councils")—**all these "National Councils" were out for one thing only, namely, to secure autonomy so that the central government should not interfere in their affairs and not control them.** "Give us autonomy and we shall recognize the central Soviet power, but we cannot recognize the local Soviets and they must not interfere in our affairs; we shall organize ourselves as we wish and can, and shall treat our national workers and peasants as we please." **That is the sort of autonomy—essentially bourgeois in character—aimed at by the bourgeoisie who demand full power over "their" working people within the framework of autonomy.**

"**It goes without saying that the *Soviet power cannot sanction autonomy of this kind.*** To grant autonomy in order that all power within the autonomous unit may belong to the national bourgeoisie, who insist upon non-interference on the part of the Soviets, to

surrender the Tatar, Bashkir, Georgian, Kirghiz, Armenian and other workers to the tender mercies of the Tatar, Georgian, Armenian and other bourgeois— that is something to which the Soviet power cannot consent.

"**Autonomy is a form. The whole question is what class content is put into this form. The Soviet power is not at all opposed to autonomy. It is in favour of autonomy— but only such autonomy in which the entire power belongs to the workers and peasants, and in which the bourgeois of all nationalities are debarred not only from power, but even from participation in the election of government bodies.**

"Such autonomy will be autonomy on a Soviet basis.

"There are two types of autonomy. One is purely nationalistic. It is built on the principle of extra-territoriality, on the basis of nationalism. The outcome of this type of autonomy is "National Councils," with national regiments around these councils, division of the population into national curiae, and the national strife which is bound to follow from this. That type of autonomy spells inevitable doom for the Soviets of Workers' and Peasants' Deputies. It is the type of autonomy which the bourgeois Rada was out for. In order to grow and develop, the Rada had naturally to wage war on the workers' and peasants' Soviets. That has also been the outcome of the existence of the Armenian, Georgian and Tatar National Councils in Transcaucasia. Gegechkori was right when he said to the Transcaucasian Soviets and the Commissariat: "Do you know that the Commissariat and the Soviets have become a fiction, since all power has actually passed into the hands of the National Councils, which possess their own national regiments?"

"That type of autonomy we reject in principle.

"**We propose another type of autonomy, *autonomy for regions* where one or several nationalities predominate. No national curiae, no national barriers! Autonomy must be Soviet autonomy, based on Soviets**. **This means that the division of the population of the given region must be on class, not national lines. Class Soviets as the basis of autonomy, and autonomy as the form of expression of the will of these Soviets—such is the nature of the Soviet autonomy we propose."** (SPEECHES DELIVERED AT A CONFERENCE ON THE CONVENING OF A CONSTITUENT CONGRESS OF SOVIETS OF THE TATAR-BASHKIR SOVIET REPUBLIC May 10-16, 1918)

बुर्जुआ संघवाद के मॉडल में "दो-चैम्बर" की व्यवस्था, जिसमें एक तरफ़ राष्ट्रीय संसद और दूसरी तरफ संघीय काउंसिलों की व्यवस्था होती है, को सिद्धान्तः ख़ारिज करते हुए स्तालिन कहते हैं की समाजवाद ऐसी व्यवस्था को सिरे से नकारता है। इसके अलावा, स्तालिन यह भी बताते हैं कि मौजूदा संक्रमणकालीन दौर में तो एक मजबूर केंद्रीकृत अखिल-रूसी सत्ता की आवश्यकता और वांछनीयता कहीं ज़्यादा है जब दुश्मन यानी कि बुर्जुआ वर्ग और साम्राज्यवादी ताक़तें अभी मुक़म्मल तौर पर परास्त नहीं हुई हैं। एक ऐसे दौर में समानान्तर स्थानीय व क्षेत्रीय प्राधिकार स्थापित करने का मतलब है हर प्रकार के केन्द्रीय प्राधिकार और नियन्त्रण का विघटन और पूँजीवाद की बहाली को आमंत्रण देना; **ठीक इसी काम को 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप का नेतृत्व न सिर्फ वांछनीय**

बता रहा है बल्कि सैद्धान्तिक तौर पर इसके लिए ज़मीन भी तैयार कर रहा है! यह संशोधनवाद नहीं तो और क्या है? देखें स्तालिन क्या कहते हैं:

> "**The bourgeois world has elaborated one definite form of relation between autonomous regions and the central authority. I am referring to the United States of America, Canada and Switzerland.** In these countries the central authority consists of a national parliament of the whole country, elected by the entire population of the states (or cantons), and, parallel with this, a federal council, chosen by the governments of the states (or cantons). **The result is a two-chamber system, with its legislative red tape and the stifling of all revolutionary initiative.**
>
> "**We are opposed to such a constitution of authority in our country. We are opposed to it *not only* because socialism categorically repudiates such a two-chamber system, *but also* because of the practical exigencies of the period we are passing through. The fact is that in the present transitional period, when the bourgeoisie has been broken but not crushed, when the disruption of economic life and of the food supply, aggravated by the machinations of the bourgeoisie, has not yet been eliminated, and when the old, capitalist world has been shattered but the new, socialist world has not yet been completely built—at such a moment the country needs a strong all-Russian power capable of crushing the enemies of socialism completely and organizing a new, communist economy.** In short, what we need is that which has come to be called the dictatorship of the urban and rural proletariat. **To set up sovereign local and regional authorities parallel with the central authority at such a moment would in fact result in the collapse of all authority and a reversion to capitalism. For this reason, all functions of importance to the whole country must be left in the hands of the central authority, and the regional authorities must be vested chiefly with administrative, political and cultural functions of *a purely regional nature.*** These are: education, justice, administration, essential political measures, forms and methods of application of the general decrees in adaptation to the national conditions and manner of life—and all this in the language native to and understood by the population. Hence the generally recognized type of regional union, headed by a regional Central Executive Committee, is the most expedient form of such autonomy.
>
> "That is the type of autonomy the necessity of which, in the present transitional period, is dictated both by the interests of consolidating the dictatorship of the proletariat and by the common struggle of the proletarians of all the nations of Russia against bourgeois nationalism, that last bulwark of imperialism." (SPEECHES DELIVERED AT A CONFERENCE ON THE CONVENING OF A CONSTITUENT CONGRESS OF SOVIETS OF THE TATAR-BASHKIR SOVIET REPUBLIC May 10-16, 1918)

स्तालिन के उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि सोवियत रूस में संघीय ढाँचे की संक्रमणशील व्यव्यस्था वास्तव में *क्षेत्रीय स्वायत्तता* की व्यवस्था थी, न की बुर्जुआ संघवाद की व्यवस्था जिसका सबसे मुखर पैरोकार मौजूदा दौर में 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप बना हुआ है। इनके नेता महोदय सम्पादकीय में लिखते हैं:

> “यहां पर संघीय ढांचे और क्षेत्रीय स्वायत्तता में फर्क़ समझना जरूरी है, क्योंकि अक्सर भारत में उपस्थित क़ौमों की क्षेत्रीय स्वायत्तता को ही संघीय ढांचा समझ लिया जाता है।... दूसरी तरफ क्षेत्रीय स्वायत्तता में क़ौमों के पास सीमित हक़ होते हैं और केन्द्र द्वारा लिए गए फैंसले उन्हें मानने पड़ते हैं।”

भारत का तो पता नहीं लेकिन सोवियत यूनियन में क्षेत्रीय स्वायत्तता की ही व्यवस्था अमल में थी जिसमें केन्द्रीय फ़ैसलों को क्षेत्र-विशेष की विशिष्ट स्थितियों के अनुसार लागू किया जाता था। संघीय ढांचे का भी इस क्षेत्रीय स्वायत्तता से अधिक सोवियत यूनियन में कोई अर्थ नहीं था। वास्तव में, बुण्डवादियों और ऑस्ट्रो-मार्क्सवादियों से 1910 के दशक के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय प्रश्न पर चली बहस से ही लेनिन और स्तालिन ने हमेशा क्षेत्रीय स्वायत्तता के सिद्धान्त का समर्थन किया था, जो कि बुण्डवादियों व ऑस्ट्रो-मार्क्सवादियों के राष्ट्रीय सांस्कृतिक स्वायत्तता के सिद्धान्त का खण्डन था। वास्तव में, क्षेत्रीय स्वायत्तता के साथ सुसंगत जनवाद-आधारित केन्द्रीयतावादी राज्यसत्ता ही एक बहुराष्ट्रीय देश में राज्यसत्ता के संघटन व ढांचे का लेनिनवादी सिद्धान्त है, जिसे स्तालिन ने कभी नहीं बदला। उपरोक्त उद्धरण से यह एकदम साफ़ है सोवियत यूनियन में भी नॉमिनल 'संघीय ढांचे' का केन्द्रीय निर्णयों के कार्यान्वयन में क्षेत्रीय स्वायत्तता से अधिक और कुछ मतलब नहीं था। लेकिन ‘प्रतिबद्ध’ के सम्पादक महोदय इस विषय में मार्क्सवादी सिद्धान्त में “इज़ाफ़ा” करने के फेर में हैं! लेकिन इस प्रयास में वह निकृष्ट कोटि के क़ौमवाद के मलकुण्ड में नहा जाते हैं!

बहरहाल, 1922 में रूसी, ट्रांसकॉकेशियाई, उक्रेनी, बाइलोरूसी गणराज्यों को मिला कर एकीकृत सोवियत यूनियन की स्थापना होती है और औपचारिक तौर पर भी संघ और संघीय स्वरूप का औचित्य समाप्त हो जाता है। 19 दिसम्बर, 1922 को साधिकार प्राप्त प्रतिनिधियों के सम्मेलन में रूसी एसएफ़एसआर, ट्रांसकॉकेशियाई एसएफएसआर, उक्रेनी एसएसआर और बाइलोरूसी एसएसआर द्वारा सन्धि के ज़रिये सोवियत यूनियन की स्थापना होती है। 1924 में सोवियत यूनियन का पहला संविधान अस्तित्व में आता है, जो सोवियत यूनियन की स्थापना को क़ानूनी वैधीकरण देता है।

1922 में स्तालिन सोवियत समाजवादी गणराज्यों की यूनियन के गठन की घोषणा में एकीकृत यूनियन के महत्व और औचित्य प्रतिपादन को रेखांकित करते हुए लिखते हैं:

> “…**The restoration of the national economy has proved to be impossible while the republics continue to exist separately.**
>
> **“On the other hand, the instability of the international situation and the danger of new attacks render inevitable the creation of a united front of the Soviet republics in face of the capitalist encirclement.**
>
> **“Lastly, the very structure of Soviet power, which is international in its class nature, impels the toiling masses of the Soviet republics to unite into a single socialist family.**

> "**All these circumstances imperatively demand the union of the Soviet republics into a single union state,** capable of ensuring external security, internal economic progress and the unhampered national development of the peoples.
>
> "The will of the peoples of the Soviet republics, who recently assembled at their Congresses of Soviets and unanimously resolved to form a "Union of Soviet Socialist Republics," is a reliable guarantee that **this Union is a voluntary association of peoples enjoying equal rights, that each republic is guaranteed the right of freely seceding from the Union,** that admission to the Union is open to all Socialist Soviet Republics, whether now existing or hereafter to arise, that the new union state will prove to be a worthy crown to the foundation for the peaceful co-existence and fraternal co-operation of the peoples that was laid in October 1917, and that it will serve as a sure bulwark against world capitalism and as a new and decisive step towards the union of the working people of all countries into a World Socialist Soviet Republic."**Declaring all this before the whole world, and solemnly proclaiming the firmness of the foundations of Soviet power as expressed in the Constitutions of the Socialist Soviet Republics by whom we have been empowered, we, the delegates of these republics, acting in accordance with our mandates, have resolved to sign a treaty on the formation of a "Union of Soviet Socialist Republics.**" (Stalin, **Appendix-1, Declaration on the Formation of Union of Soviet Socialist Republics,** The Formation of the Union of the Soviet Republics, ***Report Delivered at the First Congress of Soviets of the U.S.S.R. December 30, 1922)***

सोवियत यूनियन के अधिकार-क्षेत्र को परिभाषित करते हुए सोवियत समाजवादी गणराज्यों की यूनियन के गठन की सन्धि में स्पष्ट तौर पर एक एकीकृत यूनियन की तस्वीर सामने आती है। इसी के आधार पर 1924 का संविधान बना था।

अन्तरराष्ट्रीय सन्धियों के अनुसमर्थन, युद्ध व शान्ति की घोषणा, नए गणराज्यों को यूनियन में शामिल करने के अधिकार, घरेलू व विदेशी व्यापार की नीतियां तय करना, यूनियन के सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को लेकर सामान्य नियोजन तैयार करना, यातायात, पोस्ट और टेलीग्राफ़ की व्यवस्था को संचालित करना, यूनियन का एक एकीकृत बजट तैयार करना, मौद्रिक व क्रेडिट नीति तैयार करना, भूमि बंदोबस्त व भूमि कार्यावधि की नीति तैयार करना, न्यायपालिका की कार्यप्रणाली से जुडी नीतियाँ बनाना, श्रम कानूनों को बनाना, शिक्षा की आम नीतियाँ तैयार करना, समान वज़न व माप की व्यवस्था तैयार करना इत्यादि सभी फ़ैसले एकीकृत यूनियन के अधिकार क्षेत्र में आते थे। 1936 का संविधान, जिसे सुखविन्दर जानबूझकर और इरादतन ग़लत उद्धृत करते हैं, वस्तुतः 1924 के संविधान पर ही आधारित था, जिसे हम ऊपर विस्तार से उद्धृत कर चुके हैं और सुखविन्दर के झूठ और बेईमानी को भी देख चुके हैं। देखें, 1922 की सोवियत यूनियन के गठन विषयक सन्धि में क्या लिखा था:

> "The Russian Socialist Federative Soviet Republic (R.S.F.S.R.), the Ukrainian Socialist Soviet Republic (Ukr.S.S.R.), the Byelorussian Socialist Soviet Republic (B.S.S.R.) and

the Transcaucasian Socialist Federative Soviet Republic (T.S.F.S.R.—Georgia, Azerbaijan and Armenia) conclude the present treaty of union providing for uniting into a single union state—"the Union of Soviet Socialist Republics"—on the following principles:

1. Within the jurisdiction of the Union of Soviet Socialist Republics, as represented by its supreme organs, are the following:

a) representation of the Union in foreign relations;

b) modification of the external boundaries of the Union;

c) conclusion of treaties providing for the admission of new republics into the Union;

d) declaration of war and conclusion of peace;

e) obtaining state loans abroad;

f) ratification of international treaties;

g) establishment of systems of foreign and home trade;

h) establishment of the principles and the general plan of the national economy of the Union as a whole and conclusion of concession agreements;

i) regulation of transport, posts and telegraphs;

j) establishment of the principles of organisation of the armed forces of the Union of Soviet Socialist Republics;

k) ratification of the single state budget of the Union of Soviet Socialist Republics, establishment of a monetary, currency and credit system and a system of All-Union, Republican and local taxes;

l) establishment of the general principles of land settlement and tenure as well as of the exploitation of mineral wealth, forests and waters throughout the territory of the Union;

m) enactment of All-Union legislation on resettlement;

n) establishment of the principles of court structure and court procedure, as well as civil and criminal legislation for the Union;

o) enactment of basic labour laws;

p) establishment of general principles of public education;

q) establishment of general measures for the protection of public health;

r) establishment of a system of weights and measures;

s) organisation of statistics for the whole Union;

t) enactment of fundamental laws relating to the rights of foreigners in respect to citizenship of the Union;

u) the right of general amnesty;

v) annulment of decisions violating the Treaty of Union on the part of Congresses of Soviets, Central Executive Committees and Councils of People's Commissars of the Union Republics." (Stalin, Appendix-2, TREATY ON THE FORMATION OF THE UNION OF SOVIET SOCIALIST REPUBLICS, The Formation of the Union of the Soviet Republics, ***Report Delivered at the First Congress of Soviets of the U.S.S.R. December 30, 1922)***

यानी सभी अहम राजनीतिक व आर्थिक फैसले केन्द्रीय सोवियत सत्ता द्वारा लिए जाने थे। **यूनियन के नॉमिनल 'संघीय ढांचे' का बचा क्या है? कुछ भी नहीं! दरअसल, कई पेटी-बुर्जुआ और बुर्जुआ अकादमीशियन सोवियत यूनियन की इस आधार पर आलोचना भी करते हैं! कहना होगा कि सुखविन्दर जैसे टुटपुंजिया क़ौमवादियों की ज़्यादा क़रीबी इन पेटी-बुर्जुआ व बुर्जुआ मार्क्सवाद-विरोधी अकादमीशियनों के साथ बनती है।**

सोवियत यूनियन में सत्ता का सर्वोच्च निकाय सोवियत यूनियन की सोवियतों की कांग्रेस थी:

"2. The supreme organ of power in the Union of Soviet Socialist Republics is the Congress of Soviets of the Union of Soviet Socialist Republics and, in the intervals between congresses, the Central Executive Committee of the Union of Soviet Socialist Republics." (*ibid*)

यूनियन के सर्वोच्च न्यायलय को सभी न्यायिक मामलों में सर्वोच्च अधिकार व नियन्त्रण प्राप्त थे:

"12. In order to uphold revolutionary law within the territory of the Union of Soviet Socialist Republics and to unite the efforts of the Union Republics in combating counter-revolution, a Supreme Court is set up under the Central Executive Committee of the Union of Soviet Socialist Republics with the functions of supreme judicial control, and under the Council of People's Commissars of the Union a joint organ of State Political Administration is set up, the Chairman of which is a member of the Council of People's Commissars of the Union with voice but no vote." (*ibid*)

ग़ौरतलब है कि **सोवियत यूनियन की जन कमिसारों की काउंसिल के सभी हुक्मनामे और फ़ैसले सभी गणराज्यों के लिए बाध्यताकारी थे:**

"13. The decrees and decisions of the Council of People's Commissars of the Union of Soviet Socialist Republics are binding on all the Union Republics and have immediate effect throughout the territory of the Union."(*ibid*)

यूनियन के गणराज्यों की केन्द्रीय कार्यकारिणी समितियाँ जन कमिसारों के हुक्मनामों और फ़ैसलों के ख़िलाफ़, *बिना इन फ़ैसलों के कार्यान्वयन को स्थगित किये,* सोवियत यूनियन की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति की प्रेसिडियम के सामने अपील कर सकती थी और इन मसलों पर भी अंतिम फैसला लेने का अधिकार यूनियन के निकायों के पास ही था:

"15. The Central Executive Committees of the Union Republics may appeal against the decrees and decisions of the Council of People's Commissars of the Union to the Presidium of the Central Executive Committee of the Union of Soviet Socialist Republics, ***without, however, suspending their operation.***

"16. ***Decisions and orders of the Council of People's Commissars of the Union of Soviet Socialist Republics may be annulled only by the Central Executive Committee of the Union of Soviet Socialist Republics and its Presidium; orders of the various People's Commissars of the Union of Soviet Socialist Republics may be annulled by the Central Executive Committee of the Union of Soviet Socialist Republics, by its Presidium, or by the Council of People's Commissars of the Union.***

"17. Orders of the People's Commissars of the Union of Soviet Socialist Republics may be suspended by the Central Executive Committees, or by the Presidiums of the Central Executive Committees of the Union Republics, only in exceptional cases, if the said orders are obviously at variance with the decisions of the Council of People's Commissars or the Central Executive Committee of the Union of Soviet Socialist Republics. When suspending an order, the Central Executive Committee, or the Presidium of the Central Executive Committee, of the Union Republic concerned shall immediately notify the Council of People's Commissars of the Union of Soviet Socialist Republics and the competent People's Commissar of the Union of Soviet Socialist Republics." (*ibid*)

यूनियन की जन कमिसारों के निर्देशों द्वारा सभी गणराज्यों की कमिसारों की गतिविधियाँ संचालित होती थीं। **साथ ही, सभी गणराज्यों के बजट केन्द्रीय तौर पर तय होते थे:**

"19. The Supreme Council of National Economy and the People's Commissariats of Food, Finance, Labour and the Workers' and Peasants' Inspection of each of the Union Republics, while being directly subordinate to the Central Executive Committees and the Councils of People's Commissars of the respective Union Republics, are guided in their activities by the orders of the corresponding People's Commissars of the Union of Soviet Socialist Republics.

"20. Each of the republics constituting the Union has its own budget, as an integral part of the general budget of the Union endorsed by the Central Executive Committee of the

Union. The budgets of the republics, both revenue and expenditure sides, are fixed by the Central Executive Committee of the Union. The items of revenue, and the size of allocations from revenue which go to make up the budgets of the Union Republics, are determined by the Central Executive Committee of the Union." (*ibid*)

इसके अलावा सभी नागरिकों के पास एक साझा यूनियन की नागरिकता थी:

"21. A common Union citizenship is established for all citizens of the Union Republics.

"22. The Union of Soviet Socialist Republics has its flag, arms and state seal.

"23. The capital of the Union of Soviet Socialist Republics is the City of Moscow.

"24. **The Union Republics will amend their Constitutions in conformity with the present treaty.**

"25. **Ratification, alteration and supplementation of the Treaty of Union is within the exclusive jurisdiction of the Congress of Soviets of the Union of Soviet Socialist Republics.**

"26. Every Union Republic retains the right freely to secede from the Union." (*ibid*)

1923 में बोल्शेविक पार्टी की बारहवीं कांग्रेस में एक साल पहले पार्टी के भीतर जॉर्जियाई राष्ट्रीय भटकाव पर चली बहस को समेटते हुए स्तालिन गणराज्यों के संघ से एक एकीकृत यूनियन तक की प्रक्रिया को रेखांकित करते हुए कहते हैं:

"Lastly, about Mdivani. May I be permitted to say a few words about this question, which has bored the whole congress. He talked about the Central Committee's vacillations. He said that one day it decides to unite the economic efforts of the three Transcaucasian republics, the next day it decides that these republics should unite in a federation, and the day after that it takes a third decision that all the Soviet republics should unite in a Union of Republics. That is what he calls the Central Committee's vacillations. Is that right? No, comrades, that is not vacillation, it is system. The independent republics first drew together on an economic basis. That step was taken as far back as 1921. After it was found that the experiment of drawing together the republics was producing good results the next step was taken—federation, particularly in a place like Transcaucasia, where it is impossible to dispense with a special organ of national peace. As you know, Transcaucasia is a country where there were Tatar-Armenian massacres while still under the tsar, and war under the Mussavatists, Dashnaks and Mensheviks. To put a stop to that strife an organ of national peace was needed, i.e., a supreme authority whose word would carry weight. It was absolutely impossible to create such an organ of national peace without the participation of representatives of the Georgian nation. **And so, several months after the economic efforts were united, the next step was taken—a federation of republics, and a year after that yet another step was taken, marking the final stages in the process of uniting the republics—a Union of Republics was**

formed. Where is there vacillation in that? It is the system of our national policy. Mdivani has simply failed to grasp the essence of our Soviet policy, although he regards himself as an old Bolshevik." (**The Twelfth Congress of R.C.P (B)**, 1923)

और देखें स्तालिन क्या लिखते हैं:

"The basis of this Union is the voluntary consent and the juridical equality of the members of the Union. Voluntary consent and equality—because our national programme starts out from the clause on the right of nations to exist as independent states, what was formerly called the right to self-determination. Proceeding from this, we must definitely say that no union of peoples into a single state can be durable unless it is based on absolutely voluntary consent, unless the peoples themselves wish to unite. The second basis is the juridical equality of the peoples which form the Union. That is natural. I am not speaking of actual equality—I shall come to that later—for the establishment of actual equality between nations which have forged ahead and backward nations is a very complicated, very difficult, matter that must take a number of years. I am speaking now about juridical equality. This equality finds expression in the fact that all the republics, in this case the four republics: Transcaucasia, Byelorussia, the Ukraine and the R.S.F.S.R., forming the Union, enjoy the benefits of the Union to an equal degree and at the same time to an equal degree forgo certain of their independent rights in favour of the Union. If the R.S.F.S.R., the Ukraine, Byelorussia and the Transcaucasian Republic are not each to have its own People's Commissariat of Foreign Affairs, **it is obvious that the abolition of these Commissariats and the establishment of a common Commissariat of Foreign Affairs for the Union of Republics will entail a certain restriction of the independence which these republics formerly enjoyed, and this restriction will be equal for all the republics forming the Union. Obviously, if these republics formerly had their own People's Commissariats of Foreign Trade, and these Commissariats are now abolished both in the R.S.F.S.R. and in the other republics in order to make way for a common Commissariat of Foreign Trade for the Union of Republics, this too will involve a certain restriction of the independence formerly enjoyed in full measure, but now curtailed in favour of the common Union, and so on, and so forth.** Some people ask a purely scholastic question, namely: do the republics remain independent after uniting? That is a scholastic question. **Their independence is restricted, for every union involves a certain restriction of the former rights of the parties to the union. But the basic elements of independence of each of these republics certainly remain, if only because every republic retains the right to secede from the Union at its own discretion.**

"Thus, the concrete form the national question has assumed under the conditions at present prevailing in our country is how to achieve the co-operation of the peoples in economic, foreign and military affairs. **We must unite the republics along these lines into a single union called the U.S.S.R. Such are the concrete forms the national question has assumed at the present time."(***ibid)*

उपरोक्त चर्चा में हम स्पष्ट तौर पर देख सकते हैं कि 1922 के बाद सोवियत यूनियन एक एकीकृत व केन्द्रीकृत व्यवस्था वाली यूनियन था, जिसमें सभी महत्वपूर्ण मसलों पर यूनियन की केन्द्रीय सत्ता के निकाय ही फ़ैसले लेते थे। संघीय ढांचा भी केवल नाममात्र का ही था और वास्तव में एक केन्द्रीकृत यूनियन का ढांचा प्रभावी था **क्योंकि किसी भी महत्वपूर्ण राजनीतिक और आर्थिक मसले पर, संवैधानिक या वैधिक मसले पर गणराज्यों का निर्णय केन्द्रीय राज्यसत्ता के मातहत था, 1924 में भी और 1936 में भी और उसके बाद 1953 तक भी। गणराज्यों के पास केवल इन निर्णयों के कार्यान्वयन सम्बन्धी अधिकार थे। इससे ज़्यादा किसी चीज़ की ज़रूरत भी नहीं थी।**

पाठक स्वयं देख लें कि 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक का यह दावा कि "कुछ चुनिन्दा मुद्दों पर फ़ैसला लेने का हक़ केन्द्र के पास होता है और बाकी ज़्यादातर मामलों में फ़ैसला लेने का हक़ क़ौमों के पास होता है। जिन फ़ैसलों का अधिकार केन्द्र के पास होता है उस पर भी अन्तिम फ़ैसला कौमों के पास होता है, यानी केन्द्र के फ़ैसलों का मानना या न मानना उनके पास ही होता है" सोवियत यूनियन पर कितना लागू होता है? सोवियत यूनियन का इतिहास, बोल्शेविक पार्टी का व्यवहार और मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त तो एक अलग ही कहानी बयान कर रहे हैं। पहले हम इस प्रकार की असंगति को इन महोदय की मूर्खता मात्र का परिणाम मानते थे। अभी भी इनकी मूर्खता को लेकर हमें कोई सन्देह नहीं है, लेकिन अब इसमें बेईमानी, कपट, फ़रेब की आदतों को जोड़ना आवश्यक है। यह व्यक्ति अपनी संघवादी-संशोधनवादी कार्यदिशा को सही साबित कर अपने अहं की तुष्टि हेतु अब इतिहास और सिद्धान्त दोनों के ही क्षेत्र में मूर्खता के साथ-साथ इरादतन विकृतिकरण, बेईमानी और झूठ का सहारा ले रहा है। इसमें अब कोई सन्देह नहीं बचा है।

इतिहास और सिद्धान्त के प्रति निपट अज्ञानता के कारण ही हमने 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व को अपढ़ "मार्क्सवादी" कहा था!

इस बार भी 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के सरगना ने मार्क्सवादी सिद्धान्त और इतिहास की समझदारी के प्रति अपनी घोर अज्ञानता प्रदर्शित की है। 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महोदय लिखते हैं:

> "क़ौमी समस्या का अन्तिम समाधान यह है कि दबी-कुचली क़ौमों को आत्म निर्णय, मतलब अपना अलग क़ौमी राज बनाने का अधिकार मिले। इस दिशा में फ़ौरी क़दम यह है कि राज्यों की स्वायत्तता के ऊपर हमला बंद होना चाहिए और इस हमले का विरोध होना चाहिए। *इसका दूरगामी हल यह है कि*

भारत में आज़ाद क़ौमें, जिनको आत्म-निर्णय का अधिकार मिल चुका हो को लेकर संघीय ढांचा का निर्माण किया जाना चाहिए।" (ज़ोर हमारा)

सबसे पहली बात तो यह कि राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार के सिद्धान्त पर अमल करते हुए यदि विभिन्न राष्ट्र आपसी सहमति से साथ आने को राज़ी होते हैं तो कम्युनिस्ट सकारात्मक तौर पर संघीय ढाँचे के हिमायती नहीं होते हैं और न ही ऐसा कोई प्रस्ताव ही रखते हैं। कम्युनिस्ट सुसंगत जनवाद पर आधारित अधिकतम सम्भव जनवादी केन्द्रीयता पर आधारित एकीकृत यूनियन के पक्षधर होते हैं और उसी का प्रस्ताव भी रखते हैं। वस्तुगत स्थितियों के दबाव में यदि तात्कालिक तौर पर संघ या संघीय संरचना अपनानी पड़े तो भी कम्युनिस्टों के लिए वह पूर्ण यूनियन की ओर एक मध्यवर्ती क़दम से ज़्यादा नहीं होता है। देखें स्तालिन अगस्त 1917 में क्या लिखते हैं:

> "**We are by no means opposed to uniting nations to form a single integral state. We are by no means in favour of the division of big states into small states. For it is self-evident that the union of small states into big states is one of the conditions facilitating the establishment of socialism.**
>
> "But we absolutely insist that union must be voluntary, for only such union is genuine and lasting.
>
> "But that requires, in the first place, full and unqualified recognition of the right of the peoples of Russia to self-determination, including the right to secede from Russia.
>
> "It requires, further, that this verbal recognition should be backed by deeds, that the peoples should be permitted right away to determine their territories and the forms of their political structure in their constituent assemblies.
>
> "Only such a policy can promote confidence and friendship among the peoples. Only such a policy can pave the way to a genuine union of the peoples." (Stalin, COUNTER-REVOLUTION AND THE PEOPLES OF RUSSIA, August, 1917)

यानी कम्युनिस्टों का सकारात्मक प्रस्ताव सुसंगत जनवाद पर आधारित केन्द्रीय यूनियन का ही होता है। जब समाजवाद के अन्तर्गत क़ौमों के दमन की वस्तुगत ज़मीन समाप्त होने के साथ कालान्तर में तमाम क़ौमों के बीच का अविश्वास समाप्त होगा, सर्वहारा वर्ग की राष्ट्रपारीय वर्गीय एकता सुदृढ़ होगी और तमाम क़ौमें आपसी सहमति से एक साथ रहने को राज़ी होंगी तो वे केन्द्रीकृत-एकीकृत यूनियन के बजाय संघीय ढाँचे का स्वरूप क्यों चुनेंगी? क्या 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक को लगता है कि समाजवाद के अन्तर्गत केन्द्रीकृत-एकीकृत यूनियन क़ौमों के दमन का औज़ार है? यह उन्हें स्पष्ट करना चाहिए और अगर उनका ऐसा ही मानना है तो उन्हें फिर लेनिन, स्तालिन और सोवियत यूनियन में समाजवादी प्रयोग की आलोचना लिखनी चाहिए।

अब चलिए सम्पादक महोदय के इस उपरोक्त दावे के मद्देनज़र सोवियत यूनियन में संघवाद/ संघीय ढाँचे होने या नहीं होने की स्थिति का जायज़ा ले लेते है और यह भी देख लेते हैं कि कितनी धूर्तता और हाथ की सफ़ाई से यह महोदय सोवियत यूनियन के इतिहास के साथ दुराचार करते हैं।

अगर राष्ट्रीय प्रश्न की नज़र से देखें तो 1917 की रूसी अक्तूबर क्रान्ति एक ऐसे देश में सम्पन्न हुई थी जिसे "राष्ट्रों की जेल" कहा जाता था और ज़ारकालीन रूस में क़ौमी दमन अपने नग्नतम रूप में अस्तित्वमान था। 'महान रूसी' क़ौमवाद और कट्टरपन्थ लगातार अन्य राष्ट्रों और अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं को अपने बूटों तले रौंद रहा था और ज़ारशाही की राजकीय नीतियाँ इसी ओर संचालित थी। क्रान्ति के समय तमाम दमित राष्ट्र और राष्ट्रीयताएं इसी शर्त पर साथ आये थे कि क्रान्ति के बाद उन्हें आत्मनिर्णय का अधिकार मिलेगा जोकि उन्हें मिला भी। बल्कि यह कहना ज़्यादा उपयुक्त होगा कि सोवियत रूस में उन्हें यह अधिकार सच्चे अर्थों में प्राप्त हुआ, खोखले बुर्जुआ अर्थों में नहीं। इसके साथ ही क्रान्ति के बाद सोवियत समाजवादी रूस के अस्तित्व में आने के साथ 1918 में आरएसएफ़एसआर (रूसी समाजवादी संघात्मक सोवियत गणराज्य) का गठन होता है जिसमें सोवियत रूस के अलावा कई स्वायत्त इकाइयाँ शामिल थीं और कई अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रीय गणराज्य भी अस्तित्व में आये। ये तमाम स्वतन्त्र गणराज्य आरएसएफ़एसआर के साथ कई सन्धियों के ज़रिये मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध (alliance) में शामिल थे। इसके अलावा जो एक अन्य तथ्य हमारी चर्चा के लिए महत्वपूर्ण है वह यह है कि इस दौर में जो राष्ट्रीय गणराज्य अस्तित्व में आये उनमें से अधिकतर में पहले बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में बुर्जुआ जनवादी गणराज्यों की स्थापना ही हुई थी और कुछेक में सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में जनता के जनवादी गणराज्यों की स्थापना हुई थी। इस पूरे ऐतिहासिक कालखंड को आप हमारे इस लेख में पढ़ सकते हैं-

http://ahwanmag.com/archives/7594

हमने उपरोक्त लेख में स्पष्ट तौर पर बताया था कि

> "रूसी साम्राज्य की हरेक दमित क़ौम में अक्टूबर क्रान्ति के साथ क़ौमी आज़ादी का सवाल हल हुआ और वहाँ किसी न किसी क़िस्म के जनवादी गणराज्य (जनता के जनवादी गणराज्य या बुर्जुआ जनवादी गणराज्य) अस्तित्व में आए, न कि वहाँ पर समाजवादी क्रान्ति के साथ समाजवादी गणराज्य अस्तित्व में आए। इन तमाम दमित क़ौमों में समाजवादी गणराज्यों की स्थापना क़ौमी आज़ादी की मंज़िल पूरी होने के बाद 1919-20 से लेकर 1940 तक होती रही और वे अलग-अलग समय पर सोवियत संघ में शामिल हुए।
>
> ...

“रूसी क्रान्ति में भी दमित क़ौमों में जनता के जनवादी गणराज्य या बुर्जुआ राष्ट्रीय गणराज्य ही पहले अस्तित्व में आये थे। जिन दमित क़ौमों के देशों में पूँजीवादी सम्बन्धों का विकास हो गया था, वहाँ भी पहले जनता के जनवादी गणराज्य या बुर्जुआ जनवादी गणराज्य ही अस्तित्व में आये थे। इन देशों में समाजवादी गणराज्य बाद में स्थापित हुए। पहले वे जनता के जनवादी या बुर्जुआ जनवादी गणराज्य के एक दौर से गुज़रे। वे समाजवादी रूस के साथ पहले संघ में और बाद में यूनियन में शामिल हुए थे।...

“अक्टूबर 1917 में बोल्शेविक क्रान्ति के बाद सोवियत रूस अस्तित्व में आया और उसने अब तक मौजूद रहे ज़ारवादी रूसी साम्राज्य की सभी दमित क़ौमों को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया। **जब इन दमित क़ौमों को यह अधिकार मिला तो क़ौमी सवाल हल हो गया और वहाँ पर समाजवादी शक्तियों या बुर्जुआ राष्ट्रवादी शक्तियों के नेतृत्व में या तो जनता के जनवादी गणराज्य अस्तित्व में आये या फिर बुर्जुआ जनवादी गणराज्य अस्तित्व में आये।**

“इनमें से कुछ देशों में समाजवादी क्रान्ति के लिए भी बोल्शेविकों ने संघर्ष शुरू कर दिया और कुछ देशों में समाजवादी गणराज्य भी अस्तित्व में आ गये। इसमें 1918 से 1921 तक जारी गृहयुद्ध की भी एक भूमिका थी। इसके बाद, 1919 से लेकर मुख्य रूप से 1924 तक तमाम ऐसे देश जहाँ समाजवादी गणराज्य अस्तित्व में आ चुके थे, वे सोवियत रूस के साथ पहले संघ और फिर संघीय यूनियन में शामिल होते रहे। इसी प्रक्रिया में सोवियत संघ अस्तित्व में आया। कुछ देश तो 1940 तक सोवियत संघ में शामिल हुए।

...

“अक्टूबर क्रान्ति के बाद सोवियत सरकार ने सभी दमित क़ौमों के आत्मनिर्णय के अधिकार को बिना शर्त स्वीकार किया। इसके तत्काल अमल के लिए राष्ट्रीयताओं की जनकमिसारियत (नार्कोमनाट्स) का गठन किया गया जिसके कमिसार ख़ुद स्तालिन थे। आरम्भ में ही **पोलैण्ड** के और फ़िनलैण्ड के राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकार किया गया।आगे हम अलग-अलग दमित क़ौमों के लिए रूस में हुई समाजवादी क्रान्ति के ज़रिये क़ौमी सवाल के हल होने और जनवादी गणराज्यों के अस्तित्व में आने पर संक्षिप्त निग़ाह डालते हैं, जिससे कि ट्रॉट-बुण्डवादियों के दिमाग़ में फैली धुन्ध कुछ साफ़ हो सके।” (अभिनव, **अक्टूबर क्रान्ति और रूसी साम्राज्य की दमित क़ौमों की मुक्ति के विषय में ट्रॉट-बुण्डवादियों के विचार: अपढ़पन का एक और नमूना)**

यह वह दौर भी था जब सोवियत रूस में गृहयुद्ध जारी था और श्वेत सेनाएं कई राष्ट्रीय गणराज्यों में बुर्जुआ सत्ताओं के साथ मिलकर क्रान्ति और सर्वहारा सत्ता को कुचलने का प्रयास कर रही थी। इसी सन्दर्भ में स्तालिन

ने कहा था कि आत्मनिर्णय का अधिकार कोई निरपेक्ष सिद्धान्त नहीं है और जहाँ यह सोवियत सत्ता के अस्तित्व पर चोट करेगा वहाँ ऐसी प्रतिक्रियावादी ताक़तों को बेरहमी से कुचला जायेगा। यह राष्ट्रीय दमन की नीति नहीं है, बल्कि सोवियत समाजवादी सत्ता की आत्मरक्षा का प्रश्न है। देखें मज़दूरों, सैनिकों, किसान प्रतिनिधियों की सोवियतों की तीसरी अखिल-रूसी कांग्रेस में दिए भाषण में स्तालिन क्या कहते हैं:

> "The Soviet Government alone publicly proclaimed the right of all nations to self-determination, including complete secession from Russia. The new government proved to be more radical in this respect than even the national groups within some of the nations.
>
> "Nevertheless, a series of conflicts arose between the Council of People's Commissars and the border regions. They arose, however, not over issues of a national character, but over the question of power. The speaker cited a number of examples of how the bourgeois nationalist governments, hastily formed in the border regions and composed of representatives of the upper sections of the propertied classes, endeavoured, under the guise of settling their national problems, to carry on a definite struggle against the Soviet and other revolutionary organizations. All these conflicts between the border regions and the central Soviet Government were rooted in the question of power. And if the bourgeois elements of this or that region sought to lend a national colouring to these conflicts, it was only because it was advantageous to them to do so, since it was convenient for them to conceal behind a national cloak the fight against the power of the labouring masses within their region.
>
> "As an illustration, the speaker dwelt in detail on the Rada, convincingly showing how the principle of selfdetermination was being exploited by the bourgeois chauvinist elements in the Ukraine in their imperialist class interests.
>
> "**All this pointed to the necessity of interpreting the principle of self-determination as the right to self-determination not of the bourgeoisie, but of the labouring masses of the given nation. The principle of self-determination should be a means in the struggle for socialism and should be subordinated to the principles of socialism."** (Stalin, SPEECH DELIVERED AT THE THIRD ALL-RUSSIAN CONGRESS OF SOVIETS OF WORKERS', SOLDIERS' AND PEASANTS' DEPUTIES January 10-18, 1918)

इन तमाम राष्ट्रीय गणराज्यों में पहले से चल रहे संघर्ष में गृहयुद्ध के रूप में उपस्थित हुए आकस्मिक कारक के पूरे घटनाक्रम ने स्थानीय बोल्शेविकों की ओर वर्ग शक्तियों का पलड़ा झुका दिया। एक तरफ़ तो किसानों व आम मेहनतकश जनसमुदायों की बड़ी आबादी इन भूतपूर्व दमित राष्ट्रों में बोल्शेविकों के साथ आ खड़ी हुई क्योंकि बोल्शेविक ही इन राष्ट्रों में भी तमाम जनविरोधी ताक़तों के ख़िलाफ़ खुलकर लड़ रहे थे, जिन ताक़तों के साथ मिलकर श्वेत सेनायें इन जगहों पर क़त्लेआम मचा रही थीं। साथ ही सोवियत सत्ता के विरुद्ध राष्ट्रीय गणराज्यों में बुर्जुआ शक्तियों की प्रतिक्रियावादी ताक़तों (श्वेत सेना और साम्राज्यवादी ताक़तें) से संशय के कारण इन तमाम गणराज्यों में बुर्जुआ सत्ताओं को उखाड़ फेंकने का काम भी पूरा हुआ और कुछ समय में ही इन गणराज्यों में समाजवादी सोवियत सत्ताओं की स्थापना भी हुई और यूनियन गठन की प्रक्रिया उसके कुछ

समय बाद ही पूरी हो गयी। **ये थीं वे परिस्थितियां जिनमें स्वतंत्र हुए बुर्जुआ गणराज्यों में सोवियत समाजवादी गणराज्यों की स्थापना हुई। लेकिन अपने अज्ञान और मूर्खता के कारण सुखविन्दर को लगता है कि अक्तूबर क्रान्ति ने सभी दमित कौमों में तत्काल समाजवादी क्रान्ति को सम्पन्न किया! 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक के इस अज्ञानतापूर्ण विचार की तफ़सील से पड़ताल के लिए उपरोक्त सन्दर्भित लेख को पढ़ें।**

ज़ाहिरा तौर पर क्रान्ति के तुरन्त बाद तमाम राष्ट्रीय गणराज्यों के सम्बन्ध में संघीय ढांचे की नीति ही व्यावहारिक तौर पर अपनायी जा सकती थी; इनमें से कुछ गणराज्य अभी समाजवादी गणराज्य नहीं बने थे, राष्ट्रीय दमन अभी कोई सुदूर अतीत की घटना नहीं थी और रूस जिसे "राष्ट्रों का क़ैदख़ाना" कहा जाता था वहाँ दमित राष्ट्रों में रूस के प्रति एक स्वाभाविक अविश्वास मौजूद था। यह तमाम भूतपूर्व दमित राष्ट्र एक संघात्मक ढाँचे में सोवियत रूस के साथ इसलिए शामिल हुए क्योंकि बोल्शेविक पार्टी ने इन तमाम दमित क़ौमों को सही और सच्चे अर्थों में आत्मनिर्णय का अधिकार दिया। इसलिए रूस में क्रान्ति के बाद कुछ समय के लिए, जिसे कि संक्रमणकालीन अवधि कहा गया था, रूस के तमाम भूतपूर्व दमित राष्ट्रों के सम्बन्ध में संघीय ढाँचे की नीति को अपनाया गया था। क्रान्ति के बाद 1917-18 से 1922 तक समाजवादी रूस को रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी गणराज्य (Russian Soviet Federative Socialist Republic; RSFSR) कहा गया।

अब ज़रा देखते हैं कि उस दौर में भी जब औपचारिक तौर पर सोवियत यूनियन में एक संक्रमणकालीन संघीय ढांचे का अनुसरण किया जा रहा था, वास्तविकता में संघीयता के कितने तत्व मौजूद थे। 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक की निगाह में "मार्क्सवादी" इतिहासकार ई.एच.कार (जी हां! चूहा मोटा होता है, तो लोढ़े जितना ही मोटा होता है: इण्टरनेट से उड़न्त-पड़न्त अध्ययन करके 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक सुखविन्दर को यह लगा कि ई. एच. कार मार्क्सवादी इतिहासकार हैं!) का क्रान्ति के बाद सोवियत यूनियन में यूनियन बनने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी यही मानना था कि शुरू से ही ज़ोर केन्द्रीयकरण व एकीकरण पर था। जैसा कि हमने ऊपर बताया, सम्पादक महोदय ने 'प्रतिबद्ध' अंक-33 में प्रकाशित राष्ट्रीय प्रश्न पर अपने आलेख में कार को "मार्क्सवादी" इतिहासकार घोषित कर दिया था! और उनकी पुस्तक, 'द बोल्शेविक रेवोल्यूशन 1917-1923, वॉल्यूम-1' से कई उद्धरण भी पेश किये थे। इसमें कोई समस्या भी नहीं है, क्योंकि मार्क्सवादी इतिहासकार न होते हुए भी ई. एच. कार ने तथ्यों के प्रति अधिकतम सम्भव वस्तुपरक रवैया अपनाया है और उनका शोध कार्य बिना शक़ उपयोगी है। समस्या कई जगहों पर उनके विश्लेषण में आती है, जो अलग-अलग मात्रा में ब्रिटिश अनुभववादी परम्परा, प्रत्यक्षवादी परम्परा और साथ ही आइज़क डॉइचर और यहां तक कि त्रॉत्स्की तक से प्रभावित है। ई.एच. कार के इतिहास-लेखन की समस्याओं, उसके सकारात्मकों व नकारात्मकों का प्रश्न एक अलग वृहद् चर्चा का विषय है। इसमें दिलचस्पी रखने वाले पाठक 'दिशा सन्धान' (dishasandhaan.in) में श्रृंखला में प्रकाशित हो रही साथी अभिनव की पुस्तक 'सोवियत समाजवादी प्रयोगों के अनुभव: इतिहास और सिद्धान्त की समस्याएं' पढ़ सकते हैं।

बहरहाल, आइये देखें, यूनियन गठन के विषय में कार क्या लिखते हैं-

> “These external trappings of dispersal served, however, to mask a movement towards reunion which was already far advanced. The end of the civil war marked the transition from the second of the three periods retrospectively recorded in the party resolution of 1923, "cooperation in the form of a military alliance", to the third, the "military-economic and political union of the peoples ", which was ultimately to be completed in the form of the Union of Soviet Socialist Republics.”(E.H.Carr, **The Bolshevik Revolution 1917-1923, Volume-1**, page-380)

और भी देखें:

> “On June I, 1919, a decree of VTsIK in Moscow, while " recognizing the independence, liberty and self-determination of the toiling masses of the Ukraine, Latvia, Lithuania, White Russia and Crimea", cited the Ukrainian resolution of May 18 and unspecified "proposals of the Soviet Governments of Latvia, Lithuania and White Russia", and, on the strength of these, proclaimed the necessity of "military union" between the socialist Soviet republics of these countries and the RSFSR. The union was to involve a fusion of "military organizations and military command, of the councils of national economy, of railway administration and economic structure, of finances, and of people's commissariats of labour". The decree concluded by appointing a commission to negotiate the carrying out of this project. (*ibid*, page 381-82)

1918 के सोवियत रूसी संविधान में ‘फ़ेडरेशन’ के प्रश्न पर अस्पष्टता को भी कार रेखांकित करते हैं:

> “The constitutional outcome of all these arrangements cannot easily be defined: what resulted from the treaties with the Ukrainian and White Russian republics and **the three Transcaucasian republics had some features of an alliance, some of a federation and some of a unitary state. But this vagueness was characteristic of all Soviet constitutional documents of the period.**” (*ibid*, page-389)

1918 से 1922 के संक्रमणकालीन अवधि के दौरान भी ज़रूरी मसलों पर ‘फ़ेडरेशन’ से अधिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध (alliance) के तत्व मौजूद थे:

> “None of the treaties between the RSFSR and the other Soviet republics included foreign affairs in the list of unified commissariats **and, since the unified control of foreign affairs was a traditional hall-mark of federation, its omission here emphasized the character of the relation now established as an alliance rather than a federation.**” (*ibid*, Page-390-91)

1922 से पहले भी सोवियत रूस ही तमाम गणराज्यों की तरफ़ से विदेशी सन्धियों को मुक़म्मल करता था, जोकि किसी ‘फ़ेडरेशन’ में सम्भव ही नहीं है:

> "**The treaties created a formal union so close that the common attitude to the outside world could, on any matter of importance, only be determined by a common authority and represented through a single channel.** But nothing like uniformity of procedure had yet been established. The Soviet delegation which signed the treaty of peace with Poland at Riga on March 18, 1921, was a joint delegation of the RSFSR and the Ukrainian SSR, the Russian delegation also holding full powers from the White Russian SSR. Two days earlier the RSFSR had signed at Moscow a treaty with Turkey determining the frontier between Turkey and the three Transcaucasian republics, and even effecting several territorial changes, without any formal participation of the republics either in the negotiation or in the conclusion of the treaty." (*ibid*, page-391)

और यह भी देखें:

> **"On February 22, 1922, the eight republics entered into an agreement empowering the RSFSR to "represent and defend" their interests at the forthcoming international conference at Genoa, and to sign not only any agreement concluded there, but "all international agreements of any kind directly or indirectly connected with this conference with states represented at the said conference and with any other states, and to take all measures resulting therefrom"."** (*ibid*, page-392)

ये सारा घटनाक्रम वास्तव में मैत्रीपूर्ण सन्धियों से संघीय ढांचे और फिर संघीय ढांचे से यूनियन की ओर चल रही विकास-प्रक्रिया को ही दिखला रहा था, जो कि समाजवादी सत्ता आने के बाद कालान्तर में होना ही था और यही बोल्शेविकों की नीति भी थी। यूनियन गठन की प्रक्रिया 1922 के अन्त तक पूरी हो चुकी थी:

> "**Before the end of 1922, therefore, the process of reunion was virtually complete and was beginning to be taken for granted. It remained only to clothe it in the appropriate constitutional garb. The dividing line between the independent republics linked in treaty relations with the RSFSR and the autonomous republics within the RSFSR was not in practice very great.** The logical course would no doubt have been to assimilate them to one another, either by making the treaty republics autonomous units of an enlarged RSFSR, or by removing the autonomous republics from the aegis of the RSFSR and making them units, side by side with the RSFSR and the treaty republics, of the larger union. (*ibid*, page-393-94)

उपरोक्त चर्चा में हम स्पष्ट तौर पर देख सकते हैं कि सोवियत इतिहास व मार्क्सवादी सिद्धान्त के प्रति 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेतृत्व की अनभिज्ञता और अज्ञानता इस सम्पादकीय में भी पूरे शबाब पर है। इनकी इसी अज्ञानता को जब हमने राष्ट्रीय प्रश्न पर इनके पिछले आलेख की आलोचना में भी उजागर किया था तब यह नाराज़ हो गए थे! हमने उपरोक्त चर्चा में यह भी देखा कि बेईमानी से किये गए इनके अहमकाना दावे न तो किसी ऐतिहासिक तथ्य की कसौटी पर खरे उतारते हैं और न ही मार्क्सवादी सिद्धान्त की कसौटी पर।

हमने पहले भी इंगित किया था कि कोई भी राजनीतिक ग्रुप या शख्स मार्क्सवादी विज्ञान से विचलन के चलते यदि विचारधारात्मक शिखर की ढलान पर एक दफा फिसलना शुरू कर दे और समय रहते ईमानदारी से समाहार करके इसे दुरुस्त न करे तो वह वैचारिक पतन के ऐसे पंककुण्ड में जा गिरता है कि यह अविश्वसनीय भी प्रतीत होने लगता है। 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेतृत्व के साथ यही किस्सा घटित हुआ है। लेकिन विज्ञान के मामले में तो ऐसा ही होता है। आप विज्ञान से बदसलूक़ी करेंगे तो विज्ञान भी आपको बख्शेगा नहीं! **इस ग्रुप का नेतृत्व क़ौमवाद के गड्ढ में क्या गिरा, हर मसले पर ही इनके राजनीतिक-विचारधारात्मक अंदाज़ ही बदल गए!**

चूँकि मौलिक लेखन करने पर सम्पादक महोदय की 'रगड़ाई' हो जाती है इसलिए इधर-उधर से टीपा-टीपी करके पत्रिका का अंक तैयार कर दो!

हमने ऊपर देखा कि 'प्रतिबद्ध' के अंक (बुलेटिन संख्या-34) के सम्पादकीय में एक बार फिर सम्पादक महोदय ने सोवियत यूनियन के विषय में जो विचित्र बेसिर-पैर के दावे किये हैं उनकी वास्तविकता क्या है। 'प्रतिबद्ध' का अंक-34 भी पिछले अंक की तरह क़ौम-भाषा के मुद्दे पर ही मुख्यतः केन्द्रित था। अब जब इस ग्रुप की राजनीति ही इन मसलों पर सिमट चुकी है तो ज़ाहिरा तौर पर लेखन और चिन्तन के केन्द्र में यही मसले रहेंगे। सर्वहारा वर्ग के लिए अहम अन्य मसलों पर लेखन व चिन्तन को ये क़ौमवादी "क़ौमी सवाल के प्रति बेरुखी" करार देते हैं! अपने नए अंक यानी संख्या-35 में भी इन्होंने क़ौमी सवाल को ही प्राथमिकता दी है और इस बार भारत में राष्ट्रीय प्रश्न पर लेख प्रकाशित किया है जिसकी विस्तारपूर्वक आलोचना हम आने वाले दिनों में प्रस्तुत करेंगे। गौरतलब है कि अंक- 34 की सामग्री में मौलिक लेखन बेहद कम था, और इधर-उधर से ही ज़्यादा सामग्री ली गयी है।

यह तरीक़ा भी नायाब है! जो ख़ुद कहने में अब डर लगता है वह अन्य लोगों के मुहं से बुलवाओ! और ऐसे सभी लेखों के अंत में लिख दो कि "लेखक के सभी विचारों से हमारी सहमति नहीं है!" बेचारा पाठक एक अजीब-सी दुविधा में फँसा रहेगा कि पत्रिका के सम्पादक की किन विचारों से सहमति है और किन से असहमति! लेकिन ऐसा करने के पीछे एक वजह है। पिछले एक साल से भी ज़्यादा समय से क़ौम और भाषा के सवाल पर इनकी ट्रॉट-बुण्डवादी, क़ौमवादी, संघवादी और सुधारवादी और साथ ही कुलकवादी और कोरोना पर अवैज्ञानिक कोविडियट अवस्थिति की लगातार आलोचना होती रही है। इसके चलते इन्होंने अन्दरखाने चुपचाप कई मसलों पर अपनी अवस्थितियाँ बदल डालीं, बिना यह बताये कि ऐसा इन्होंने किया क्यों! इसलिए अब ये ट्रॉट-बुण्डवादी अपने मुंह से अपनी ही अवस्थिति को खुलेआम कहने से बचते हैं और इसी का तोड़ इन्होंने इन प्रश्नों पर दूसरों के लेख देकर निकाला है। 'प्रतिबद्ध' के अंक-34 के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ था।

दिलचस्प बात यह है कि अगर सोवियत यूनियन वास्तव में "संघीय" था, तब तो सम्पादक महोदय को लगातार इतिहास से संदर्भित करते हुए अपने कैडर और पूरे आन्दोलन को शिक्षित-दीक्षित करना चाहिए था। लेकिन 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप का नेतृत्व जानता है कि इस सवाल पर उन्होंने चार सौ बीसी की है, इतिहास को तोड़ा-मरोड़ा है, ग़लत व झूठे उद्धरण पेश किये हैं, तथ्यों को *मिसरिप्रेसेन्ट* किया है और झूठ व ग़लतबयानी का सहारा लिया है। इसलिए पाठक देख सकते है कि यह अपनी फेसबुक पोस्ट्स में भी सोवियत यूनियन के "संघवादी" होने पर कोई तथ्य या सन्दर्भ प्रस्तुत नहीं करते हैं। क्योंकि ऐसा कोई तथ्य इतिहास में मिलेगा नहीं!

"क़ौमी दमन" पर सम्पादक महोदय की लफ्फाज़ी और अनैतिहासिक बातें जारी थीं और अभी भी जारी हैं!

जहां तक 'प्रतिबद्ध' अंक-34 के सम्पादकीय का प्रश्न है, तो उसे पढ़कर एक बार के लिए तो अपनी ही आँखों पर भरोसा नहीं होता है कि आप वाक़ई किसी "मार्क्सवादी" पत्रिका का सम्पादकीय पढ़ रहे हैं या किसी सामाजिक-जनवादी और साथ ही क़ौमवादी-संघवादी पत्रिका के सम्पादक के कुण्ठित मन की कराह। लेकिन अब इस तरह के वैचारिक मुज़ाहिरे के अलावा 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक से और किसी बात की उम्मीद की भी नहीं जा सकती है। हमने देखा कि सम्पादकीय में 'प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व ने अपनी संघवादी अवस्थिति को, जो कि पूरी तरह से एक ग़ैर-मार्क्सवादी अवस्थिति है, पूर्णता प्रदान करने की कोशिश की है और इसके लिए बेहद बेईमानी और अवसरवादी तरीक़े से सोवियत रूस के संविधान का सहारा लेने का प्रयास किया ताकि वह अपनी संघवादी लाइन को मार्क्सवादी सिद्धान्त के तौर पर साबित कर सकें।

सम्पादकीय मुख्य तौर पर यह बताने के लिए ही लिखा गया था कि भारत की सभी क़ौमें दमित हैं और यह राष्ट्रीय दमन 1947 से ही जारी है, लेकिन फ़ासीवादी मोदी सरकार के सत्ता में आने के साथ भारत की सभी क़ौमों का दमन और बढ़ा है। इस बार अपनी क़ौमवादी थीसिस को आगे बढाते हुए 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक सुखविन्दर ने भारत के केन्द्र को बड़ा पूँजीपति, जोकि उनके अनुसार समय के साथ इजारेदार बना, और साम्राज्यवादी पूँजी के हितों का रक्षक बताया है और सुखविन्दर के अनुसार इस अराष्ट्रीय चरित्र वाले केन्द्र का अंतरविरोध भारत में रहने वाली सभी क़ौमों के साथ है और नतीजतन यह बेक़ौमी (!) बुर्जुआज़ी सभी क़ौमों को दबाती है! सम्पादक सुखविन्दर न तो 'प्रतिबद्ध' के पिछले अंक में प्रकाशित अपने लेख 'राष्ट्रीय प्रश्न और मार्क्सवाद' में ही यह साबित कर पाए थे कि किन पैमानों से कश्मीर और उत्तर-पूर्व को छोड़कर मुख्यभूमि

भारत की अन्य क़ौमें दमित हैं, और न ही वह इस बार के सम्पादकीय में ही यह दिखला पाएं हैं। यह उनके लिए एक स्वतःसिद्ध तथ्य के समान है। हमें पूरा यक़ीन है कि अपनी इसी अनैतिहासिक ग़ैर-मार्क्सवादी मूर्खतापूर्ण "थीसिस" को इन महोदय द्वारा अपने नए लेख 'भारत में राष्ट्रीय प्रश्न' का आधार बनाया गया है। इन महोदय का यह भ्रम है कि यदि कोई कश्मीर व उत्तर-पूर्व को छोड़कर शेष मूख्यभूमि भारत में रहने वाली तमाम क़ौमों को दमित क़ौमें नहीं मानता तो वह भारत को एक राष्ट्र मानता है! यह किस प्रकार के विक्षिप्त व्यक्ति की तर्क-पद्धति हो सकती है? कश्मीर व उत्तर-पूर्व के राज्यों को छोड़कर बाक़ी भारत में रहने वाली क़ौमों की बुर्जुआज़ी दमित नहीं है, उसे राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी हासिल हो चुकी है और इसलिए वे दमित क़ौमें नहीं हैं, बल्कि इन क़ौमों के शासक वर्गों की हिस्सेदारी से निर्मित एक बहुक़ौमी मिश्रित शासक वर्ग भारत में सत्ता में क़ाबिज़ है। मैं क़ौमी सवाल पर अपने अगले आलेख में 'प्रतिबद्ध' के अंक-35 में भारत में राष्ट्रीय प्रश्न पर प्रकाशित मूर्खतापूर्ण लेख की विस्तृत आलोचना रखूंगी।

हमने 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेतृत्व के पिछले लेख 'राष्ट्रीय प्रश्न और मार्क्सवाद' की अपनी आलोचना में और अन्यत्र भी इस बात को बार-बार रेखांकित और चिन्हित किया है कि बिना किसी क़ौम की बुर्जुआज़ी के दमन के क़ौमी दमन अस्तित्व में आ ही नहीं सकता है। इसके बगैर राष्ट्रीय दमन की अवधारणा ही बेमानी हो जाती है। दमित क़ौम की बुर्जुआज़ी इस दमन के ख़िलाफ़ लड़ती है या नहीं, या फिर कितने रैडिकल और निर्णायक तरीक़े से लडती है, इसका इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि ऐसी बुर्जुआज़ी दमित है या नहीं। कोई भी क़ौम तभी दमित मानी जायेगी जब उसकी बुर्जुआज़ी का दमन हो रहा होगा। क़ौमी दमन की शुरुआत ही दमित क़ौम की बुर्जुआज़ी और दमनकारी क़ौम के शासक वर्ग के आपसी अंतरविरोध के चलते ही होती है। लेकिन जल्द ही यह आर्थिक उत्पीड़न राजनीतिक दमन-उत्पीड़न का रूप ग्रहण कर लेता है और जल्द ही दमित क़ौम के अन्य हिस्सों को भी अपनी ज़द में ले लेता है। स्तालिन ने "मार्क्सवाद और राष्ट्रीय प्रश्न" में इस बात को एकदम स्पष्ट तरीक़े से परिभाषित किया है। लेकिन 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक तोते की तरह रट लगाए बैठे हैं कि पंजाब समेत भारत की सभी क़ौमें दमित हैं। इस क़ौमी दमन को दिखलाने के लिए वह केन्द्र की एनडीए सरकार द्वारा जीएसटी की व्यवस्था को लागू किया जाना और मौजूदा कृषि क़ानूनों का पारित किया जाना, ये दो उदहारण देते हैं।

केन्द्र और राज्यों के बीच के आपसी अंतरविरोध किसी भी पैमाने से क़ौमी दमन नहीं है। केन्द्र के शासक वर्ग की राष्ट्रीय पहचान क्या है? वह किसी "राष्ट्रीय" बुर्जुआ वर्ग की नुमाइन्दगी कर रहा है? 'प्रतिबद्ध' का सम्पादक जवाब देता है बड़ी बुर्जुआजी! तो इस बड़ी बुर्जुआज़ी की "राष्ट्रीय" पहचान क्या है? अभी तक तो यह महोदय इन प्रश्नों का जवाब देने से बचते रहे हैं, अब देखते हैं कि अपने नए लेख में इन्होंने क्या नए गुल खिलाये हैं। सच्चाई यह है कि भारत की शासक बुर्जुआज़ी राष्ट्रीय तौर पर एक मिश्रित चरित्र (composite character) रखती है और इसके संघटन की शुरुआत राष्ट्रीय आन्दोलन के उभार के साथ ही शुरू हो गयी थी। इस पर हम

आगे विस्तार से तथ्यों व तर्कों समेत लिखेंगे और दिखलाएंगे कि भारत की शासक बुर्जुआज़ी में भारत की तमाम क़ौमों (जो कि दमित नहीं हैं) की बुर्जुआज़ी को हिस्सेदारी हासिल है। इन अलग-अलग क़ौमों में क़ौमवादी भावनाओं और राष्ट्रीय अस्मितावादी राजनीति को हवा देने का काम ये ही बुर्जुआज़ी अलग-अलग समय पर अपने आर्थिक हितों के साधन और सर्वहारा वर्ग की एकता को तोड़ने के लिए बटखरे के तौर पर करती है, लेकिन ये किसी भी तरह से दमित क़ौम नहीं मानी जा सकतीं।

बहरहाल, राष्ट्रीय प्रश्न पर 'प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व की यह पूरी समझदारी कितनी उथली है और मार्क्सवाद-लेनिनवाद से किस रूप में विचलन है यह हम पहले भी दर्शा चुके हैं। लेकिन इस बार चूँकि 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक क़ौम और भाषा के सवाल पर अपने कुतर्कों और क़ौमी सवाल पर अपनी दरिद्र सैद्धांतिकी का पक्ष-पोषण करने के लिए कुछ "बेशक़ीमती नगीने" फिर लेकर आये थे, इसलिए इनका खण्डन करना एक ज़रूरी कम्युनिस्ट कार्यभार भी बनता था जिसकी विस्तृत आलोचना हमने ऊपर प्रस्तुत की है। इसके अलावा राष्ट्रीय दमन के खात्मे के लिए जो कार्यक्रम भी इस सम्पादकीय में प्रस्तुत किया गया है, वह कत्तई इस प्रश्न पर कोई लेनिनवादी कार्यक्रम नहीं है बल्कि स्पष्तः एक सुधारवादी कार्यक्रम है।

राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान के मसले पर 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेतृत्व की बन्दरकुद्दियाँ

सम्पादकीय की शुरुआत में सम्पादक महोदय ने इस तरह के कुछ नारे दिए गए हैं-

> "राज्यों की स्वायत्तता के हक़ में खड़े हों! भारत की सभी क़ौमों के लिए आत्म-निर्णय के हक़ का नारा बुलंद करो! भारत में संघीय ढांचे के निर्माण के लिए आगे आओ!"

यहाँ पाठक देख सकते हैं कि क़ौमी दमन के हल के तौर पर यह अवस्थिति अपने आप में ही बेहद गड्डमड्ड है जिसका मार्क्सवाद–लेनिनवाद से दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरे, भारत के सभी राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अधिकार की बात 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महोदय ने अपने सुधारवादी कार्यक्रम को लेनिनवादी कार्यक्रम दिखलाने के लिए बस जोड़ दी है। पाठक अगर याद करें और अब तक चली बहस के दस्तावेज़ों को सन्दर्भित करें तो वे पाएंगे की इस प्रश्न पर भी इनकी अवस्थिति की हमारे द्वारा प्रस्तुत की गयी आलोचना का एक अहम मुद्दा यह था कि यदि कोई क़ौम दमित है तो उसके लिए एकमात्र सही क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यक्रम अलग होने के अधिकार समेत आत्मनिर्णय के अधिकार का होता है, जिस पर 'प्रतिबद्ध' ग्रुप का नेतृत्व शान्त था और संघीय अधिकारों से ज़्यादा कुछ नहीं मांग रहा था। 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप ने पंजाब व मुख्यभूमि भारत की अन्य

क़ौमों के लिए, जिन्हें की वह दमित क़ौमें मानते थे, यह कार्यक्रम, यानी आज़ादी का राष्ट्रीय जनवादी कार्यक्रम कभी प्रस्तुत ही नहीं किया था और आलोचना में रगड़े जाने के बाद इसे जोड़ लिया है। लेकिन हमारे ट्रॉट-बुण्डवादी यह बताने की ज़हमत तक नहीं उठाते हैं कि दमित क़ौमों के लिए इनकी "पूर्ण और सुसंगत जनवाद" की लाइन (वास्तव में संघीय अधिकारों व स्वायत्तता की मांग) कब आत्मनिर्णय के अधिकार यानी अलग होने के अधिकार समेत आत्मनिर्णय के अधिकार की लाइन में तब्दील हो गयी! **इसी को हमने बार-बार चोर-दरवाज़े से लाइन बदलना कहा है।** लेकिन हम ऐसे कहते हैं तो यह नाराज़ भी हो जाते हैं और आलोचना पर बात करने की बजाय आलोचना की शैली को पकड़कर बैठ जाते हैं!

सम्पादकीय मुख्य तौर पर इसलिए लिखा गया है कि अपनी "स्वायत्तता" और संघवाद की सुधारवादी लाइन को पुनः परिभाषित किया जा सके। हालाँकि सम्पादक महोदय द्वारा इसके पक्ष-पोषण के लिए जो भारी-भरकम सैद्धान्तिक ज़मीन तैयार करने की कोशिश की गयी थी, लेकिन वह एकदम फुस्स-पटाखा साबित हुई है!

कुतर्कों को दोहराते रहने से वे तर्क नहीं बन जाते हैं!

सम्पादकीय की शुरुआत में ही 'प्रतिबद्ध' के संपादक सुखविंदर लिखते हैं,

> "भारत में केन्द्र (जो कि मुख्य तौर पर भारत का सबसे बड़ा पूँजीपति, जो कि समय के साथ इजारेदार पूँजीवाद में विकसित हुआ और साम्राज्यवादी पूँजी के हितों का रक्षक है) और भारत में मौजूद अलग-अगल क़ौमों के बीच टकराव 1947 से ही जारी है। 2014 में जब से फ़ासीवादी राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ का राजनीतिक विंग भारतीय जनता पार्टी दिल्ली के सिंहासन पर स्थापित हुआ है, यह टकराव और भी तीख़ा हुआ है और भविष्य में और भी तीख़े होने की संभावना है। अगर संघी फ़ासीवादियों ने भारत में रहने वाली अलग-अलग क़ौमों को इसी तरह कुचलना जारी रखा तो एक बहु-क़ौमी देश की तरह भारत के अस्तित्व को ख़तरा खड़ा हो सकता है।"

यह वही अवस्थिति जो इन्होंने राष्ट्रीय प्रश्न पर अपने लेख में भी रखी थी। **हालांकि एक बार फिर इनके द्वारा इस सवाल पर जलेबी पारी गयी है कि भारत की इस इजारेदार बड़ी बुर्जुआज़ी का क़ौमी चरित्र क्या है। यह बुर्जुआज़ी किस क़ौम की नुमाइंदगी करती है? यह मंगल गृह से तो आई नहीं है। बहु-क़ौमी देशों में भी यदि क़ौमी दमन है तो कोई दमनकारी क़ौम/क़ौमें तो होंगी ही।** यह दमनकारी क़ौम/क़ौमें भारत में कौन है, यह बताने से 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक सुखविन्दर बार-बार बच निकलने का असफल प्रयास करते रहे हैं और इस

सम्पादकीय में भी ऐसा ही किया गया है। हमने अपनी आलोचना में दिखलाया था की इस "अराष्ट्रीय" बुर्जुआज़ी का सिद्धान्त सम्पादक महोदय द्वारा इसीलिए दिया गया है की पंजाबी बुर्जुआज़ी की इसमें हिस्सेदारी को छुपाया जा सके। इस रूप में सुखविन्दर पंजाब की बुर्जुआजी के क्षमायाचक और उनके कुकर्मों पर पर्दा डालने का कार्य करते हैं।

इस सम्पादकीय में भी बड़ी इजारेदार पूँजी और छोटी या क्षेत्रीय पूँजी के बीच के अंतरविरोध को क़ौमी रंग दे दिया गया है। **यानी, जहां कहीं भी पूंजीपति वर्ग के धडों के बीच बेशी मूल्य के अधिग्रहण की हिस्सेदारी को लेकर कशमकश चलती है, जोकि पूँजीवाद में लाज़िमी है, उसे क़ौमी दमन ठहरा दो! यह कितने भौंडे क़िस्म का बौद्धिक दिवालियापन और विचारधारात्मक दरिद्रता है, यह स्पष्ट है।** इसलिए क़ौमी दमन साबित करने के लिए इनके द्वारा दिए गए दोनों उदहारण, जीएसटी व्यवस्था और खेती क़ानून, वास्तव में पूंजीपति वर्ग के अलग-अलग धड़ों के बीच की आपसी जद्दोजहद है, जो सिर्फ़ भारत में ही नहीं बल्कि स्विट्ज़रलैंड (जो कि सुखविन्दर का "क़ौमी शांति वाला स्वर्ग" है!) में भी मौजूद है। **इसके अलावा 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक के अनुसार खेती क़ानून चूँकि "क़ौमी दमन" का मसला है तो फिर पंजाब और हरियाणा की "दमित क़ौमों" की "क़ौमी" बुर्जुआज़ी एमएसपी की शक्ल में केन्द्र, जोकि बड़ी बुर्जुआज़ी के साथ मिलकर इनको "क़ौमी" तौर पर दबा रहा है, का हस्तक्षेप अपने "क़ौमी" मामलों में क्यों चाहती हैं?** सम्पादक महोदय का यह बेतुका तर्क कितना उथला और छिछला है, पाठक स्वयः इसका अंदाज़ा लगा सकते हैं।

आगे देखें सुखविंदर क्या लिखते हैं-

> "भारत की बड़ी बुर्जुआज़ी 1947 से ही भारत को एक क़ौम बनाने के काम में लगी हुई है। भारत की बड़ी बुर्जुआज़ी और इसके साथ ही साम्राज्यवादी पूँजी का, भारत की एकता, अखण्डता में सबसे अधिक हित है। वे पूरे भारत की मण्डी के ऊपर क़ब्ज़ा बरक़रार रखना चाहते हैं। अब इस तिकड़ी (भारत की बड़ी इजारेदार बुर्जुआज़ी, साम्राज्यवादी पूँजी और इसकी हित रक्षक, हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्ट) ने 'एक देश, एक टैक्स', 'एक देश, एक मण्डी', 'एक देश एक भाषा' आदि नारों के तहत भारत में रहने वाली अलग-अगल क़ौमों को कुचलने के प्रयास तेज़ कर दिये हैं।"

जब किसी की आँखों पर क़ौमवाद का चश्मा चढ़ा हो, तो उसे हर अंतरविरोध ही क़ौमी अंतरविरोध नज़र आता है! यानी मार्क्सवादी दृष्टिकोण से वर्ग विश्लेषण आपका हथियार अब रह ही नहीं गया है। **भारत की अखण्डता बनाये रखने में अपना हित सिर्फ़ यहाँ की बड़ी बुर्जुआज़ी का ही नहीं है, बल्कि सभी क़ौमों की बुर्जुआज़ी का है, जिनकी भारत की राजनीतिक सत्ता में भागीदारी है। निश्चय ही यह हिस्सेदारी कभी बटखरे से नाप-नापकर बराबरी से नहीं बंटती है, क्योंकि पूंजीवादी व्यवस्था का हर क्षेत्र में ही नियम असमान विकास का नियम होता**

है। लाज़िमी है कि इन हिस्सेदारियों का अनुपात बदलता रहता है और इसके लिए पूंजीपति वर्ग के अलग-अलग धड़ों में जद्दोजहद भी जारी रहती है।

दूसरी बात, पूँजीवाद के अंतर्गत मंडी सिर्फ वस्तुओं और सेवाओं की ही नहीं होती है, श्रमशक्ति (श्रमशक्ति चूंकि ख़ुद भी एक माल में बदल दी जा चुकी होती है) की भी होती है। सस्ता श्रम तो भारत के सभी क़ौमों के पूंजीपतियों को चाहिए, बड़ा हो या छोटा। अभी पिछले साल ही खट्टर सरकार ने हरियाणा(जो कि सम्पादक महोदय के अनुसार न सिर्फ़ एक क़ौम है (ग़लत!), बल्कि दमित क़ौम भी है! (एकदम ग़लत!)) के निजी क्षेत्र में हरियाणवियों के लिए नौकरियों में आरक्षण का विभाजनकारी शिगूफा उछाला था, जिसका विरोध स्वयं हरियाणा के पूंजीपतियों ने ज़ोरदार तरीक़े से किया। क्यों किया? क्योंकि सुखविन्दर की हरियाणा की इस "दमित" क़ौमी बुर्जुआज़ी को बाक़ी भारत के मज़दूरों के श्रमशक्ति के दोहन में अपनी हिस्सेदारी में कमी गंवारा नहीं थी। जब उसे उत्तर-प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, छतीसगढ़ से सस्ते श्रम की आपूर्ति हो रही है, तो वह भला स्थानीय श्रमशक्ति का दोहन क्यों करेगा, जिसकी ज़ाहिरा तौर पर, प्रवासी मज़दूरों के मुक़ाबले मोलभाव की क्षमता अधिक होगी? **भारत की सभी क़ौमों की बुर्जुआज़ी का हित भारत की अखण्डता और सम्प्रभुता में ठीक इसलिए है कि इन सभी की हिस्सेदारी भारतीय राज्यसत्ता में हैं, यह भारत के शासक वर्ग का हिस्सा हैं, बल्कि यूँ कहना बेहतर होगा की भारत का शासक वर्ग इन सभी क़ौमों की बुर्जुआज़ी से मिलकर ही बना है और इसका चरित्र बहुराष्ट्रीय ही है।**

इसके अलावा पंजाबी भाषा को लेकर सम्पादक महोदय के दिल में फिर भाषाई अस्मितावादी दर्द उठ खड़ा हुआ है! किस तरह डोगरी भाषा को वह बार-बार पंजाबी की बोली क़रार देते हैं, यह हमने इनके राष्ट्रीय प्रश्न पर पिछले लेख में ही देखा था। **वहीँ पाठक नीचे प्रस्तुत उद्धरण में यह भी देख सकते हैं कि यह महोदय कई भाषाओँ को बोलियों के रूप में जीवित रहने के लिए अभिशप्त घोषित क़रार देते हैं और उन्हें स्वतन्त्र भाषाओँ के तौर पर विकसित किये जाने की हिमायत करते हुए दिखते हैं। हालांकि जब एक बोली (डोगरी) भाषा के रूप में विकसित हो जाती है तो वही उन्हें धक्केशाही नज़र आने लगती है! क्यों? क्योंकि उनका भूतपूर्व "मार्क्सवादी" चिन्तन लाइलाज टटपुंजिया क़ौमवाद से बुरी तरफ से ग्रस्त हो चुका है।** देखें सम्पादक महोदय क्या लिखते हैं:

> "भारत कोई एक क़ौम नहीं है बल्कि बहु-क़ौमी मुल्क है। यह देश सैंकड़ों कौमियतों का घर है। यहां पर रहने वाले लोग सैंकड़ों भाषाएं बोलते हैं। इन में से सिर्फ़ 22 भाषाएं ही दर्ज़ हैं, अन्य बहुत सी भाषाएं कौमी बोलियों के तौर पर मान्यता हासिल करने के लिए जूझ रहीं हैं। इन 22 भाषाओं में शामिल डोगरी को धक्के के साथ पंजाबी से अलग करके, अलग भाषा के तौर पर मान्यता दी गई है। जबकि डोगरी पंजाबी भाषा की ही बोली (उप-भाषा) है।"

सम्पादक महोदय घोषणा करते हैं कि "केन्द्र और राज्यों के बीच टकराव या केन्द्र द्वारा क़ौमी दाबे की अनेक मिसालें हैं।" **यानी एक सच्चे टटपुंजिया संघवादी की तरह, जोकि अपनी "क़ौमी" बुर्जुआज़ी के हिस्से की लूट में आई कमी से व्यथित हो उठा है, सुखविन्दर राज्यों के अधिकारों का बीड़ा अपने नाज़ुक कन्धों पर उठाने के लिए एकदम संकल्पबद्ध हैं!** काश कि उनका भूतपूर्व "मार्क्सवादी" मन यह भी बता पाता कि लूट की इस हिस्सेदारी में इस कमी-बेशी से इन क़ौमों के मज़दूर वर्ग की जीवन स्थितियों में कोई फ़र्क नहीं आता है। हम जानते हैं कि इन तमाम राज्य सरकारों ने अपने राज्यों (जो कि सुखविन्दर के अनुसार अलग-अलग क़ौमें हैं) की आम मेहनतकश आबादी के शोषण व उत्पीड़न में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रखी है। **'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप की क़ौमवादी-संघवादी लाइन वास्तव में मज़दूर वर्ग को क्षेत्रीय या "क़ौमी" पूंजीपति वर्ग का पुछल्ला बनाने की लाइन है, यह कार्यदिशा मज़दूर वर्ग द्वारा अपनी "क़ौमी" बुर्जुआज़ी के आगे घुटने टेकने और आत्मसमर्पण की वक़ालत करती है और इसलिए गैर-सर्वहारा वर्गीय कार्यदिशा है।**

'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप का नेतृत्व उत्सा पटनायक-प्रभात पटनायक मार्का सामाजिक-जनवादियों से चौर्य-चिन्तन कर पहुँचा उनकी शरण में

इस बार 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक ने एक और कीर्तिमान स्थापित किया है- अब यह महोदय उत्सा पटनायक-प्रभात पटनायक मार्का संशोधनवादी सामाजिक-जनवादियों के शरणागत हो गए हैं। देखें सम्पादक महोदय क्या लिखते हैं:

> "चौथा इसकी चर्चा बहुत कम हो रही है वह है खाद्य सुरक्षा का मामला। किसी भी देश के लिए यह ज़रूरी है कि अनाज के मामले में आत्मनिर्भर रहे। अनाज के मामले में निर्भरता न महज़ आर्थिक पहलू से हानिकारक है बल्कि राजनीतिक तौर पर भी यह निर्भर देश को मज़बूर करने का साधन बनती है। 1950 के दशक तक भारत अनाज के लिए मुख्य तौर पर अमरीका के ऊपर निर्भर रहा है। उसके बाद हुए हरित क्रान्ति ने अनाज के मामले मे भारत को आत्मनिर्भर बनाने का काम किया है। सरकार की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वह देश की आबादी की ज़रूरतों के अनुसार अनाज की आपूर्ति सुनिश्चित करे। इसके लिए सबसे बेहतर स्थिति यह है कि ज़मीन राजकीय स्वामित्व के अधीन हो और राज्य व्यवस्था अनाज की इस आपूर्ति को सुनिश्चित करे। भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था के अंदर भारतीय राज्य व्यवस्था फ़सलों की सरकारी ख़रीद के ढंग-तरीक़ों के साथ यह आश्वस्त करता आ रहा है कि देश की आबादी की ज़रूरतों के लिए अनाज यहां पैदा हो सके। भोजन की यह आपूर्ति निजी क्षेत्र के हाथ में भी नहीं सौंपनी

चाहिए। इन अर्थों में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा, स्वास्थ्य ज़रूरतों की तरह भोजन का भी निजीकरण नहीं होना चाहिए। नये कृषि क़ानूनों के साथ यही होगा। बड़ी बुर्जुआज़ी के दख़ल के साथ खेत में बोये जाने वाली फ़सलों के क्षेत्रफल में बड़े बदलाव आने की सम्भावना है। अधिक मुनाफ़े के लिए अनाज की जगह फल, सब्ज़ियों, दाले, कपास, मसाले, कॉफी आदि व्यावसायिक फसलों के अधीन क्षेत्रफल बढ़ेगा। इससे यह हो सकता है कि यहां की आबादी की ज़रूरतों के अनुसार अनाज भी यहाँ पैदा न हो सके और अनाज के लिए देश को आयात पर निर्भर होना पड़े जो कि बहुत ख़तरनाक होगा। इससे पहले से ही भूखमरी सूचकांक, कुपोषण में चल रही बुरी व्यवस्था ओर भी बदतर होगी और मज़दूरों और मेहनतकशों के लिए दो वक़्त की रोटी खाना भी मुश्किल हो जायेगा।

“इस मामले में साम्राज्यवादी दख़ल को भी आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता है। नवंबर 2001 में विश्व व्यापार संगठन के ‘दोहा विकास एजेण्डे’ से ही भारत जैसे मुल्कों पर अनाज को आयात करने तथा अन्य व्यावसायिक फ़सलों को निर्यात करने पर लगातार दबाव बनाया जा रहा है। वास्तव में, पश्चिमी मुल्कों में अनाज की बहुतायत है और जलवायु के कारण बहुत सी व्यावसायिक फ़सलें वहां पर पैदा नहीं होती जिसके लिए उनकी निर्भरता पूर्वी एशिया और अन्य क्षेत्रों के मुल्कों के ऊपर है। साम्राज्यवादी मुल्क चाहते हैं कि भारत जैसे मुल्क उनके फालतू अनाज के लिए मण्डी बने और उनके लिए ज़रूरी अन्य फ़सलें पैदा करके उनको बेचे। अनाज की निर्भरता के साथ साम्राज्यवादियों को समझौतों में अपना दबाव बनाने में फ़ायदा मिलेगा। भारत का पूँजीपति वर्ग तभी से इससे बचता आया है। पर अब यह इसमे अपना हित भी देख रहा है। भारत का कृषि आधारित निर्यात 38.5 अरब डॉलर है। बड़ा पूँजीपति वर्ग कृषि में अपना दखल देकर निर्यात को ओर बढ़ाने के रूप में अपना मौक़ा देख रहा है।”

यह मूर्खतापूर्ण तर्क वास्तव में छोटी पूंजी और अच्छे "राष्ट्रवाद" की संशोधनवादी हिमायत के लिए प्रभात पटनायक और उत्सा पटनायक ने रखा है और यह इस मान्यता पर आधारित है कि भारत का पूंजीपति वर्ग राजनीतिक रूप से स्वतंत्र नहीं है! इसका जवाब हम पहले ही अन्यत्र दे चुके हैं जिसे हम यहाँ हू-ब-हू प्रस्तुत कर रहे हैं:

“'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप ने लाभकारी मूल्य के प्रश्न पर जो यू-टर्न मारा है, उस पर हम पहले लिख चुके हैं और उसके बारे में पंजाब के वाम हलकों के साथियों को पता है। इन्होंने लाभकारी मूल्य को धनी किसानों और कुलकों की मांग मानने और इसे भोजन की औसत कीमतों में बढ़ोत्तरी का एक कारण मानने (जो कि सही था) से एक ऐसी "महान पश्चगामी छलांग" मारी कि उनके ही साथी और कार्यकर्ता चौंक गये! इसके बारे में पहले तो 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महोदय ने तरह-तरह के (कु)तर्क दिये, जिनका खण्डन आप यहां पढ़ सकते

हैं: (https://www.facebook.com/600308269985485/posts/4214486091901000/)।

लेकिन जब इन कुतर्कों का खण्डन पेश कर दिया गया, तो इन्हें उत्सा पटनायक और प्रभात पटनायक का सहारा मिला है! माकपा के इन संशोधनवादी बुद्धिजीवियों का मानना है कि साम्राज्यवादी देश भारत की खाद्यान्न आत्मनिर्भरता को ख़त्म कर देना चाहते हैं। उनका कहना है कि यह एक प्रकार से औपनिवेशिक काल की वापसी होगी क्योंकि जब भारत खाद्यान्न आयात पर निर्भर हो जायेगा तो उसकी सम्प्रभुता और राजनीतिक स्वतंत्रता समाप्त हो जायेगी! वास्तव में, यह तर्क पटनायक दम्पति का अपने साम्राज्यवाद के 'नये सिद्धान्त' का एक अहम हिस्सा है। मज़ेदार बात यह है 2017 में साम्राज्यवाद पर हुए अरविन्द मेमोरियल सेमिनार में 'प्रतिबद्ध' के सम्पादक महोदय ने इस 'नये सिद्धान्त' का खण्डन किया था! वास्तव में, यह सिद्धान्त बेहद मूर्खतापूर्ण मान्यताओं पर आधारित है और इसका विस्तृत खण्डन हमारे साथी बी. बिपिन ने किया है।

“यह तर्क पटनायक दम्पति से चोरी कर 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व ने कहां चेंपा है? यह 'प्रतिबद्ध' के अंक- 34 के सम्पादकीय में आप देख सकते हैं।

“लेकिन यहां बात सिर्फ लाभकारी मूल्य के समर्थन के लिए महज़ संशोधनवादियों से चौर्य-लेखन और चौर्य-वक्तृता की नहीं है। बात और भी गम्भीर है। वजह यह है कि क़ौमवाद के पंककुण्ड में लथपथ होने और क़ौमी सवाल पर भयंकर अन्तरविरोधी और मूर्खतापूर्ण बातें कहने के बाद भी 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप अभी समाजवादी क्रान्ति की कार्यदिशा को ही मानता है। लेकिन उत्सा पटनायक व प्रभात पटनायक का यह तर्क कि साम्राज्यवादी देश भारत को खाद्यान्न के मामले में निर्भर बनाने की साज़िश कर रहे हैं, ताकि उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता ख़तरे में पड़ जाये, वास्तव में, आपको भारतीय पूंजीपति वर्ग के दलाल या एजेण्ट होने के विश्लेषण पर और इसलिए नवजनवादी क्रान्ति की कार्यदिशा पर ले जाता है। लेकिन चूंकि इस ग्रुप के नेतृत्व ने पहले भी सामान्य राजनीतिक, आर्थिक और विचारधारात्मक मामलों में भयंकर अनभिज्ञता और नादानी का परिचय दिया है, इसलिए इस बार भी उसके नेतृत्व ने बिना किसी गहरी जांच-पड़ताल और चिन्तन-मनन के, लाभकारी मूल्य और कुलक आन्दोलन की पूंछ पकड़कर लटकने के वास्ते, पटनायक दम्पति का एक ऐसा तर्क कॉपी कर लिया है, जो कि सीधे जनवादी क्रान्ति के कार्यक्रम पर पहुंचता है।

“'हरित क्रान्ति' के दौर में भारतीय पूंजीपति वर्ग ने खाद्यान्न के लिए कुछ उन्नत पूंजीवादी देशों पर निर्भरता को ख़त्म करने के लिए कृषि के द्रुत पूंजीवादी विकास का रास्ता चुना जिसमें धनी किसानों-कुलकों के एक वर्ग को राजकीय संरक्षण के साथ खड़ा किया गया। 1978 तक भारत खाद्यान्न का प्रमुख तौर पर निर्यातक बन चुका था। यह रास्ता भारतीय पूंजीपति वर्ग ने ठीक इसीलिए चुना था क्योंकि वह साम्राज्यवाद पर अपनी निर्भरता को न्यूनातिन्यून करना चाहता था। वजह यह थी कि वह आम

तौर पर साम्राज्यवाद का 'कनिष्ठ साझीदार' था न कि उसका दलाल। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि खाद्यान्न-आयात पर निर्भरता अपने आप में किसी पूंजीपति वर्ग के दलाल होने का कारण नहीं होता है, बल्कि वह कुल आर्थिक सम्बन्धों के समुच्चय पर निर्भर करता है। बहुत से साम्राज्यवादी देश हैं, जो कि अपनी ज़रूरत का सारा अनाज पैदा नहीं करते हैं। पटनायक दम्पति और अब उनसे चौर्य-चिन्तन कर रहे 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व का यह तर्क वैसे भी मूर्खतापूर्ण और बेतुका है।

“लेकिन एक स्तर पर पटनायक दम्पति तो फिर भी अपने "तर्क" में सुसंगत हैं, क्योंकि उनकी पार्टी तो वैसे भी जनता की जनवादी क्रान्ति की मंजिल को मानती है और भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता को पूर्ण नहीं मानती। वह नेहरू काल के आयात-प्रतिस्थापन और "समाजवाद" पर और "अच्छे राष्ट्रवाद" पर लौटना चाहती है और अब यही उसके कार्यक्रम का राजनीतिक क्षितिज है। इसलिए समस्या उनके लिए नहीं है। समस्या हमारे क़ौमवादी "मार्क्सवादी" बन्धुओं के लिए है, यानी 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के लिए। आख़िर आज भारतीय पूंजीपति वर्ग खाद्यान्न में अपनी आत्मनिर्भरता को क्यों समाप्त कर साम्राज्यवाद पर निर्भर होना चाहता है? वह क्यों अपनी सम्प्रभुता और राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ समझौता करना चाहता है? इसका एक ही जवाब हो सकता है: कि अब भारतीय पूंजीपति वर्ग दलाल में तब्दील हो चुका है, नवउदारवादी पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के दौर में वह साम्राज्यवादी देशों का एजेण्ट बनने को तैयार है। तब तो 'ललकार-प्रतिबद्ध' ग्रुप के नेतृत्व को अपनी समाजवादी क्रान्ति की लाइन भी छोड़ देनी चाहिए। या फिर उन्हें लाभकारी मूल्य का समर्थन करने के लिए प्रभात पटनायक व उत्सा पटनायक सरीखे संशोधनवादी बौद्धिकों से चौर्य-लेखन और चौर्य-वक्तृता बन्द कर देनी चाहिए! लेकिन तब उनके पास लाभकारी मूल्य का समर्थन करने के लिए कोई तर्क नहीं बचेगा! उनकी इसी अवस्था पर बच्चों की दो पुस्तकें हैं: पहली 'मनमानी के मज़े' और दूसरी 'छत पर फंस गया बिल्ला'! (दोनों पुस्तकें अनुराग ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हैं और जनचेतना पर उपलब्ध हैं!) पहले इन्होंने क़ौमवादी, ट्रॉट-बुण्डवादी, नरोदवादी मनमानी के मज़े लिये; और अब वे अपने अन्तरविरोधों में फंस कर 'छत पर फंस गया बिल्ला' की स्थिति को प्राप्त हो गये!

“इसी से एक बार फिर एक सीनियर कॉमरेड की उक्ति याद आती है: "विज्ञान ख़लीफ़ा से टक्कर लोगे, तो भर मुंह माटी ले लोगे!"”

निष्कर्ष

वैसे तो ‘प्रतिबद्ध’ अंक संख्या-34 का पूरा सम्पादकीय ही इतने कुतर्कों से भरा पड़ा है कि इन सभी का जवाब देने का मतलब एक पूरी किताब लिखना हो जायेगा। दूसरे, इनके तमाम पुराने कुतर्कों का जवाब हम पहले ही कई बार दे चुके हैं इसलिए उन्हें यहाँ दुहराना अर्थहीन है। हमारे मौजूदा लेख का मक़सद इनकी नयी

ग़लतबयानियों और झूठों को उजागर करना था जो अब इरादतन बेईमानी के सीमान्तों को छू रही हैं। सोवियत यूनियन को 'फ़ेडरेशन' घोषित करने की अवसरवादितापूर्ण जल्दबाज़ी में 'प्रतिबद्ध-ललकार' ग्रुप के नेतृत्व ने इतिहास और सिद्धान्त दोनों का ही भयंकर विकृतिकरण कर डाला है। यह अनजाने में हुई ग़लती नहीं है बल्कि राष्ट्रीय प्रश्न पर अपनी गैर-मार्क्सवादी कार्यदिशा को वैधीकरण प्रदान करने के लिए सोचे-समझे तरीक़े से अंजाम दिया गया कपट, झूठ-लफ्फाज़ी और धूर्तता है। पाठक स्वयं तय करें कि इस घटिया क़िस्म की "बौद्धिक" चार सौ बीसी को मार्क्सवाद की क्रान्तिकारी विचारधारा में संशोधनवाद को मिलाना न कहा जाये तो और क्या कहा जाये?